

Kharatara Gachha

PATTAVALI SANGRAHA

Compiled by

SRI JINAVIJAYA

Acharya Shree Jin Dharanandra Sura
SHRI PUJAYAJI MAHARAJ,
BHARUNJIKI - KASIA,
JAIPUR CITY.

Published by

PURAN CHAND NAHAR

Calcutta

Printed by M.L. Patrecha at the Vishva Vinode Press,
48 Indian Mirror Street, Calcutta,

1932

कलकत्ता निवासी बाबू पूरणचन्दजी नाहर, एम्० ए० बी० एल्० की
धर्मपत्नी श्री इन्द्रकुमारीजीके ज्ञानपत्रमी तपके उद्यापनार्थे वितीर्ण

खरतरगच्छ-पट्टावली-संग्रह

संपादक—

श्री जिनविजयजी

अधिष्ठाता—सिंधी जैन नानपीठ

शा न्ति नि के त न



प्रकाशक

बाबू पूरणचन्द नाहर, एम्० ए० बी० एल्०

न० ४८, इंडियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता

निवेदन

आज दरतरगच्छको कई प्राचीन पट्टावलियोंका यह समूह पाठकोंक सम्मुख उपस्थित करते हुए हर्ष होता है। इस विषयकी सत्र बातें प्रवीण इतिहासवेत्ता श्री जिनविजयजी महोदयके 'क्रिश्चित् वक्तव्य'से ज्ञात होगी। जैनशासनके इतिहास-सम्बन्धी साधनोंमें पट्टावलिका स्थान उच्च है, अतः जैन और जैनेतर इतिहास-प्रेमी सज्जनोंको इन पट्टावलियोंसे विशेष लाभ होगा, इस भावनासे ही इन्हें प्रकाशित किया गया है। यह छोटासा समूह पुगठत्त्वज्ञोंके लिए अधिक उपयोगी हो, इसलिए साथमें अकारादि क्रमसे नामोंकी तालिका भोदे दी गई है। आशा है कि भविष्यमें ऐसे २ जो कुछ साधन मिलेंगे, उन्हें हमारे धर्मबन्धु प्रकाशित करनेका उद्यम करते रहेंगे।

कलाकृता
४८, इंडियन मिरर स्ट्रीट }
—प्रकाशक

शाखा-समुदायका अच्छा और प्रामाणिक इतिहास तैयार हो जाय। इस भूतके आवेशानुसार हमने उन सब सामग्रियोंका संकलन करना शुरू किया। ऐसा करनेमें हमें कुछ अधिक समय लग गया और अहमदाबादके पुरातत्त्व मंदिरके आचार्यपदके भारने हमारी पूनाकी विशेष स्थितिको अस्थिर बना दिया। इसलिये इस संग्रहके विस्तृत-संकलनका जो विचार हुआ था वह शिथिल होने लगा और चिरकाल तक कुछ कार्य न हो सका। इधर जिस प्रेसमें यह संग्रह छपा उसके मालिकने छपाईके खर्च आदिका नक्काजा करना शुरू किया। जिस विस्तृतरूपमें इसे प्रकाशित करनेके लिये सोचा था उसमें बहुत कुछ समय और अर्थव्ययकी आवश्यकता थी और शीघ्र ही इस कार्यको परिपूर्ण करने जैसे संयोग दिखाई न देनेसे हमने अंतमें उस विचारको स्थगित किया और यह संग्रह जो इस रूपमें छप गया था, इसे ही प्रकाशित कर देना उचित समझा।

इसी बीचमें वावृवर्ष श्री पूरणचंदजी नाहरके अवलोकनमें यह छपा हुआ संग्रह आया और आपने इसे अपने खर्चसे प्रकाशित कर अपनी धर्मपत्नी श्रीमती इंद्रकुमारीजीके ज्ञान पंचमी तपके उद्यापन निमित्त वितोर्ण कर देनेका अभिप्राय प्रकट किया। तदनुसार पूनेसे यह छपा हुआ ग्रंथ-भाग कलकत्ते मंगवा लिया गया और प्रेसका बिल इत्यादि चुकता किया गया। इस संग्रहके साथमें हम कुछ दो शब्द लिख दें तो इसे प्रकाशित कर दिया जाय ऐसी वावृजीकी इच्छाको हमने सादर स्वीकार कर हम इस विषयमें कुछ सोचते ही थे कि कुछ ऐसे प्रसंग, एकके बाद एक, उपस्थित होते गये जिससे वर्षों तक हम उनकी उस आज्ञाका पालन नहीं कर सके और २।४ घंटेके कामको २।४ वर्ष तक ठेलते रहना पड़ा।

सन् १९२८ के प्रारम्भमें महात्माजीने गुजरात-विद्यापीठकी पुनरुद्घटना की, और विद्यापीठका ध्येय 'विद्या' नहीं 'सेवा' निश्चित किया और साथमें कई प्रतिज्ञाओंका बन्धन भी लगाया। हमारा उसमें कुछ विशेष मतभेद रहा और हमने अपने विचारोंको स्थिर करनेके लिए कुछ समय तक विद्यापीठके वातावरणसे दूर रहना चाहा। इसीके बाद तुरंत हमारा इगदा युरोप जानेका हुआ। युरोपके सामाजिक और औद्योगिक तंत्रोंका विशेषावलोकन करनेका हमें अधिक मौका मिला और उसमें हमें अत्यधिक रुचि उत्पन्न हुई। हमारा जो आजीवन अभ्यस्त-विषय संशोधनका है, उसमें तो हमें वहां कोई नवीन सीखनेकी बात नहीं दिखाई दो, क्योंकि जिस पद्धति और दृष्टिसे युरोपियन पण्डितगण संशोधन-कार्य करते हैं, वह हमें यथेष्ट ज्ञात थी और उसी पद्धति तथा दृष्टिसे हम बहुत समयसे अपना संशोधन-कार्य करते भी आते थे, केवल वहांके विद्वानोंका उत्साह और एकाग्रभाव विशेष अनुकरणीय मालुम हुआ। हमें जो खास अध्ययन करनेके विशेष विचार मालुम दिये, वे वहांके समाजवाद-विषयक थे। इन विचारोंका अध्ययन करते हुए हमारे जीवनाभ्यस्त जो संशोधन-रुचि है, वह शिथिल हो चली। समाज-जीवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली बातोंने मस्तिष्कमें अड्डा जमाना शुरू किया। इन बातोंका विशिष्ट अध्ययन करनेके लिये हमारी इच्छा वहांपर कुछ अधिक काल तक ठहरनेकी थी, लेकिन संयोगवश हमको जल्दी ही भारत लौट आना पड़ा। इधर आनेपर वावृजीने इस संग्रहकी सर्वप्रथम ही याद दिलाई, लेकिन सत्याग्रहके नूतन युद्धमें जुड़ जानेके कारण और फिर जेलखाने जैसे एकान्तवासके अनुभवानन्दमें निमग्न हो जानेसे इन पुरानी बातोंका स्मरण करना भी कब अच्छा लगता था। एक तो योंही मस्तिष्कमें समाज-जीवनके विचारोंका आन्दोलन घुड़दौड़ कर रहा था, और उसमें फिर भारतकी इस नूतन राष्ट्रक्रान्तिके आंदोलनने सहचार किया। ऐसी स्थितिमें हमारे जैसे

नित्य परिवर्तनशील प्रकृतिवाले और क्रान्तिमें ही जीवनका विकास अनुभव करनेवाले मनुष्यके मनमें वषों तक पुराने विचारोंका सप्रह फर रखना, और फिर जब चाहें तब उन्हें अपने सम्मुख एकदम उपस्थित हो जानेकी आदत बनाये रखना दुःसाध्य-सा है।

जेलमुक्ति होनेपर विधाता हमें शान्तिनिकरतन गींच लाया। विश्वभारतीके ज्ञानमय वातावरणने हमारे मनको फिर ज्ञानोपासनाकी तरफ लींचना शुरू किया और हमारी जो स्वामात्रिक सशोधन-रुचि थी, उसको फिर सतेज बनाया। वर्षोंसे हमने २४ ऐतिहासिक ग्रन्थोंके सम्पादन और मशोधनका स्वरूप कर रखा था और उसका कुछ काम हो भी चुका था, इसलिये गह-रहकर यह तो मनमें आया ही करता था कि यदि इस स्वरूपके पूरा करनेका कोई मन पूत साधन सम्पन्न हो जाय, तो एक बार इसको पूरा कर लेना अच्छा है। यानू श्री बन्धुर्गसिंहजी सिंघीके उत्साह, औदार्य, सौजन्य और सौहार्दने हमारे इस स्वरूपको एकदम मूर्तिमन्त बना दिया और हम जो सोचते थे, उससे भी कहीं अधिक मन पूत साधनकी संप्राप्ति देखकर परिणाममें हमने मिन्नी जैन ज्ञानपीठ और सिंघी जैन ग्रन्थमाला का भार उठाना स्वीकार किया।

जैसे हम यहाँ आये, तभीसे हम सप्रहके लिये श्री नाहरजीका धरानर स्मरण दिलाना चालू रहा। हम भी आज लिखते हैं, कल लिखते हैं, ऐसा जगजग डेकर उन्हें आशा दिलाने रहते थे। बहुत समय बीत जानेके कारण इस विषयमें जो कुछ हमारे पुराने विचार थे और जो कुछ हमने लिखना सोचा था, वह स्मृति-पटपर से अस्पष्ट हो गया। जिन प्रतियोंपरसे यह सप्रह मुद्रित हुआ था, वे भी पासमें नहीं रहनेसे, इस विषयमें क्या लिखें, कुछ सूझ नहीं पडती थी। 'त्रिजगि त्रिवेणि', 'कृपारस कोप', 'शत्रुजय तीर्थाङ्गार प्रथम्य' इत्यादि पुस्तकोंके प्रणयनके बाद हमारा हिन्दी-लेखन प्रायः बन्द-सा ही है। पिछले कई वर्षोंसे निरन्तर गुजराती भाषा ही में चिन्तन, मनन, लेखन, और वाग्यवहार चलने रहनेसे हिन्दी-भाषाका एक तरहसे परिचय ही छूट गया, इस कारणसे कुछ हिन्दी लिखनेका ठीक ठीक चित्तिकाय न हो पाता था, लेकिन इन दिनोंमें हमारा साहित्य-सप्रह हमारे पास पहुच गया और वर्षोंसे सूक्ष्ममें बंद पड़े हुए पुराने फागजों और टिप्पणोंको उथल पुथल करते हुए इस विषयक कुछ साधन भी हाथमें आ गये, जिससे ये पत्तियां लिखनेका मनमें कुछ विचार हो आया। बस यही इस सप्रहके धारेमें हमारा किञ्चिन् वक्तव्य है।

श्वेताम्बर जैन सघ जिस स्वरूपमें आज विद्यमान है, उस स्वरूपक निर्माणमें रत्नरत्नगच्छने आचार्य, यति और श्रावक-समूहका बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपागच्छको छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इसने गौरवकी बागवरी नहीं कर सकता। कई बातोंमें तपागच्छसे भी इस गच्छका प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारतके प्राचीन गौरवको अनुपुण रखनेवाली राजपुतानेकी धीर, भूमिका पिउने एक हजार वर्षका इतिहास ओमत्राल जातिके शौर्य, औदार्य, बुद्धि-चातुर्य और वाणिज्य-व्यवसाय-कौशल आदि महद् गुणोंसे प्रदीप्त है और इन गुणोंका जो विकास इस जातिमें हम प्रकार हुआ है, वह मुख्यतया रत्नरत्नगच्छके प्रभावान्वित मूल प्रपोक सदुपदेश तथा शुभाशीर्वादका फल है। इसलिये रत्नरत्नगच्छका उज्ज्वल इतिहास यह फल जैन सघके इतिहासका ही एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण नहीं है, बल्कि समस्त राजपुतानेके इतिहासका एक विशिष्ट प्रकरण है। इस इतिहासक सफलने सहायभूत होनेवाली प्रियुल साधन-सामग्री इधर-उधर नष्ट हो रही है। जिस तरहकी पट्टालियां इस सप्रहमें सगृहीत हुई हैं, वेही कई पट्टालियां और प्रशस्तियां

संगृहीत की जा सकती हैं और उनसे विस्तृत और शृंखलाबद्ध इतिहास तैयार किया जा सकता है। यदि समय अनुकूल रहा, तो 'सिंधी जैन ग्रंथमाला' में एक-आध ऐसा बड़ा संग्रह जिज्ञासुओंको भविष्यमें देखनेको मिलेगा।

वाचु श्री पूरणचंद्रजी नाहरने बड़ा परिश्रम और बहुत द्रव्य व्यय करके जैसलमेरके जैन शिलालेखोंका एक अपूर्व संग्रह प्रकाशित कर इस विषयमें विद्वानों और जिज्ञासुओंके सम्मुख एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है। इसके अवलोकनसे, राजपुतानेके जूने पुराने स्थानोंमें जैनोंके गौरवके कितने स्मारक-स्तंभ बने हुए हैं तथा उनसे हमारे देशके ज्वलन्त इतिहासकी कितनी विशाल-स्मृद्धि प्राप्त हो सकती है इसकी कुछ कल्पना आ सकती है। इस ग्रंथमें प्रायः खरतरगच्छके ही इतिहासकी बहुत सामग्री संगृहीत है जो इस पट्टावलिवाले संग्रहकी बातोंको पुष्टि करती है तथा कई बातोंकी पूर्ति करती है। इन सब बातोंके दिग्दर्शनकी यह जगह नहीं है। ऐसे संग्रहोंके संकलन करनेमें कितना परिश्रम आवश्यक है वह इस विषयका विद्वान् ही जान सकता है 'विद्वानेव जानाति विद्वज्जनपरिश्रमः'।

जैसलमेरके लेखोंका ऐसा सुन्दर संग्रह प्रकाशित कर तथा इस पट्टावलि संग्रहको भी प्रकट करवाकर श्रीमान् नाहरजीने खरतरगच्छकी अनमोल सेवा की है एतदर्थ आप अनेक धन्यवादके पात्र हैं। आपका इस प्रकार जो स्नेहपूर्ण अनुरोध हमसे न होता तो यह संग्रह योंही नष्ट हो जाता और इसके तैयार करनेमें जो कुछ हमने परिश्रम किया था वह अकारण ही निष्फल जाता अतः हम भी विशेष रूपसे आपके कृतज्ञ हैं।

शान्तिनिकेतन
सिंधी जैन ज्ञानपीठ
पर्येषणा प्रथम दिन, स० १९८७

जिनविजय

॥ ॐ अर्हं ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भववते महावीराय

॥ खरतरगच्छ-सूरिपरंपरा-प्रशस्तिः ॥

श्रियेऽस्तु वीरखिलगलाद्भजातः सेनागतानेकसुरेन्द्रजातः ।

दुष्टाष्टकर्मक्षयप्रदकभस्तिरस्कृताग्रोपनिषत्सलसः ॥ १ ॥

यदीयमन्तानभना मुनीवराः कुर्वन्ति धर्मं निमल कलावपि ।

अद्यापि कालेऽत्र स पञ्चमेऽपि, श्रिये सुधर्मा गणभृद्रोज्यम् ॥ २ ॥

येनाष्टौ ननपालिका नवनवस्नेहासुगा नन्धुराः

सौम्यो ननकोटयो दशगुणास्त्यक्ता ननाधिम्यकाः ।

येन स्वेन कुटम्बकेन सहितेनाग्राहि दीक्षा गुरोः

सोऽयं केरलिपुङ्गवोऽप्युपभसूर्जभूमिनिः पातु वः ॥ ३ ॥

चौरौऽपि प्रथितो विहाय सकलचौर्याद्यवद्य सुधी-

रात्मीय परिगर्ह्य कौणिकनृपाध्यक्ष तटागश्च यः ।

चौराणां शतपञ्चकेन कलितः प्रपञ्च सर्वश्रुत-

ब्रान्यासीत्प्रभयोऽथ सूरिमुकुटः सोऽस्तु श्रिये विद्विभुः ॥ ४ ॥

श्रुत्वा माधुमुखाद्विनिर्गतचोऽहो ऋषमित्यादिक

जनीमूर्तिनिरीक्षणेन तरया त्यस्त्वाध्वर नन्धुरम् ।

संसाराद्विरतो व्रत समाधिया चादाय सूरिपद

लेभे सार्थश्रुतव्रतास्पदमर्सा शय्यभनः सोऽनतात् ॥ ५ ॥

यः स्वल्पायुर्जात्या निजसुतमनकस्य चात्तचरणस्य ।

दशर्वकालिकमकरोत् स्वल्पदिनानल्पमुखहेतुः ॥ ६ ॥

त शय्यभनसूरिं प्रणमत भस्त्वा गुणाञ्जकामारम् ।

जिनशासनशृङ्गार योगिमनःसरसिजे ह्रमम् ॥ ७ ॥

तत्पट्टभूषणमणिर्जयतु यशोभद्रमूरिधौरेयः ।

गुरुभक्तिशालिद्वयः सुखकारः सयमाधारः ॥ ८ ॥

संभूतिनिजयसूरि, मकलश्रुतकेरली जगद्विदित ।

निखिलश्रीसूरिशिरास्तिलन्ममो जयतु योगीशः ॥ ९ ॥

प्राचीनगोत्रतिलको जिनशासनेऽस्मिन् मार्तण्डमण्डलवदद्भुतभास्करोऽयम् ।

दोषप्रकाशचरमश्रुतकेरलीशो जेजीयते य इह सुगिगणावर्तसः ॥ १० ॥

संधोपरोधयशतोऽखिलदृष्टकष्टविघ्नोपहागुपमर्गहर चकार ।

निर्युक्तिः कृषिखिलनृनकदम्बकस्य भः सोऽस्तु दुर्गेतिहरो गुरुभद्रजातुः ॥ ११ ॥

भूतो न कौऽपि न भविष्यति भूतलेऽस्मिन् श्रीस्थूलिभद्रसदृशौ मुनिपुङ्गवेषु ।
येनैष रागभुवनेऽपि जितो हि कामः पण्याङ्गनावरगृहे वसता निकामम् ॥१२॥
साते स्वर्गं गतेऽपि क्षितिपतिमणिना नन्दभूपेन राज्य—
मुद्रामस्यार्प्यमाणामपि च विगणयन् मोक्षदुर्गस्य मुद्राम् ।
भोगान् भोगीशतुल्यान् परिणतिविपमाः पण्यनारीविचार्य
त्यक्त्वा सर्वभेदद्वरचरणभरं यो दधार स्वदेहे ॥ १३ ॥
धन्यो हि सोऽपि जनकः शगडालमन्त्री लक्ष्मीश्च सा जनिकरी युवतीषु धन्या ।
वंशोऽपि धन्य इह नागरवाडवीयो यत्राजनिष्ट मुनिरेष मुनीन्द्रवन्द्यः ॥१४॥
शिष्यौ च स्थूलिभद्रस्य महाभिरि—सुहस्तिनौ । दशपूर्वधरावेतौ प्रवीणौ पुण्यशालिनौ ॥१५॥
जिनकल्पतुलां विभ्रतयरेको महामुनिः । द्वितीयसंप्रतिक्षमाप—प्रतिबोधकरोऽभवत् ॥१६॥
तस्योपदेशतोऽनेके विहाराः कारिता भुवि । तेन संप्रतिभूपेन यथा भूर्जिनमण्डिता ॥१७॥
वज्रः प्रवचनाधारस्तत्पट्टानुक्रमादभूत् । सुनन्दाकुक्षिसंभूतो जातमात्रो विरागवान् ॥१८॥
पालनके स्वपत्रेकादशाप्यङ्गानि लीलया । योऽपठद्रालभावेऽपि साध्वीनां वसतौ स्थितः ॥१९॥
प्रवर्धमानः क्रमशः शशाङ्कवत् ददत्प्रमोदं सकलेऽपि सङ्घे ।
मातुर्विवादेऽपि गृहीतवाँल्लघुरजोहृतिं वाचमभूपयत्पितुः ॥ २० ॥
अथो गुरुः सिंहगिरिर्निजायुः पर्याप्तिमालोक्य पदं स्वकीयम् ।
संभिन्नपञ्चद्विक—पूर्वधारिणे मुनीन्द्रवज्राय ददौ समाहितः ॥ २१ ॥
श्रीवज्रसूरिर्गुणलब्धिभूरिः कुर्वन् विहारं विविधेऽपि देशे ।
प्रोत्सर्पणां श्रीजिनशासनेऽस्मिन् नानाविधां प्रातनुत प्रभुर्यः ॥ २२ ॥
स्वयंवरे तां धनरत्नकोटिसमन्वितां श्रेष्ठिसुतां त्यजन्तम् ।
अपि स्वरूपेण जितस्वरङ्गनां तं वज्रसूरिं प्रणमाभि सादरम् ॥ २३ ॥
श्रीद्विष्वाम्नाय गतेन मातुर्वाचा सुपूर्वनवकं च पपाठ सार्द्धम् ।
श्रीआर्यरक्षितगुरुः स मुदे शमाढ्यः संबोधिताखिलपरीवृत्तिरेष भूयात् ॥ २४ ॥
श्रीमद्वृत्तिलिङ्गादिपुष्पसुगुरुः श्रीआर्यनन्दिप्रभुः
जीयान्नागकारिप्रभुश्च विजयी श्रीरेवतीसूरिराद् ।
ब्रह्मद्वीपिगुरुः सदार्यसमितेः संप्राप्तदिक्षाश्रिं
खण्डिल्लो हिमवान् गुरुर्विजयते नागार्जुनो वाचकः ॥ २५ ॥
गौविन्दाभिधवाचकं गुरुवरं संभूतिदिन्नाहयं
श्रीलौहित्यमुनिं सदा प्रणिदधे श्रीपौष्यमुख्यं गाणिम् ।
भाष्याद्येषु (?) विधायकं मुनिवरोमास्वातिसद्वाचकं
वन्दे श्रीजिनभद्रसूरितिलकं नित्यं कृतप्राञ्जलिः ॥ २६ ॥
त्रिखण्डमेदिनीराज्यं पालयन् सर्वतः प्रभुः । अवन्यां विक्रमादित्यः प्रबोध्य श्रावकी कृतः २७॥

मिध्यात्विसंगृहीतः प्राग् महाकालजिनालयः। आत्मसाक्षाद्दितो येन जिनशासनभास्वता ॥२८॥
 नव्यस्तोत्रप्रभावेण पार्धमूर्तिः प्रकाशिता । त्रिनेत्रपिण्डिकामध्यात् स्फुटादोर्ध्वमूर्तिः ॥२९॥
 श्रीवृद्धवादिमुनीन्द्र-पट्टपङ्कजभास्वरम् । सतोद्युवीमि ने भक्त्या सिद्धसेनदिवाकरम् ॥३०॥
 —चतुर्भि कलापकम् ।

धैर्याङ्गिनीभगवतीवचनात्प्रबुद्धैस्त्यक्त्वाभिमानमाखिल जगृहे चरित्रम् ।
 यैः सोमता विधिनलेन वधोपनीतास्ते सागसोऽपि यतिनीवचनाच्च मुक्ताः ॥३१॥

तद्व्यापते समीहोद्भवदुरिताभिदे साब्धिर्वेदेन्दुसंख्या
 जैना ग्रन्थाः कृताः स्युर्धनतिमिराभिदो नव्यगाथाप्रवर्धै ।

वैरप्यात्मीयशिष्यव्यपगमनभवद्दुःखतापामूर्तोष-
 श्चक्रे ग्रन्थो रमालो धुरिकृतललितो निस्तरारयो नवीनः ॥ ३२ ॥

ते हरिमद्रमुनीन्द्रा निस्तन्द्राश्चन्द्रकिरणसंकाशाः ।
 श्री आनन्दयकलघुगुरुविवृतिकरा सधन्यकाराः ॥३३॥—त्रिभिः क्लृप्तम् ।

वन्देऽह देवसूरीणं नेमिचन्द्रगुरुत्तमम् । नम सुनिहितायाथ श्रीउद्योतनमुरये ॥३४॥
 तत्पट्टदेवाचलकरनृक्षा भव्याङ्गिना कल्पितदानदक्षाः ।

सूरीश्वरास्ते सुमनोभिरामा श्रीवर्धमाना गुरवो विरामाः ॥ ३५ ॥
 ये अर्बुदाद्राट्टपभेश्वरस्य मणीमयीमूर्तिमतिप्रभावाम् ।

प्रकाशयामासुर्गधोरगेन्द्रात्संप्राप्तसाम्रापकसुरिमन्त्राः ॥ ३६ ॥
 तत्पट्टपङ्केरुहराजहसा जैनेयरा सूरीशिरोवतमाः ।

जयन्तु ते ये जिनशैवशासनश्रुतप्रविणा भगनासमाक्षेपन् ॥ ३७ ॥
 श्री पत्तने दुर्लभराजराज्ये निजित्य वादे मठनासिसूरीन् ।

वर्षेऽब्धिपक्षाप्रशशिप्रमाणे लेभेऽपि यैः परतरो निरुदयुग्म (?) ॥३८॥
 सवेगरङ्गदाला विहिता प्रस्तावकुमुभवरमाला ।

त जिनचन्द्रमुनीन्द्रं नमत जनानन्दक्षित्तिचन्द्रम् ॥ ३९ ॥
 वृत्तिश्चक्रे ननाहग्या ललितपदयुता देवतादेशतो यै-

नव्यस्तोत्रेण येषा प्रकृततनुरमूद् भूमितो दिव्यरूपी ।
 पार्थः स्फूर्जतरुणालः कलिमलमथनः स्तम्भनाधीयरोऽथ-

मस्य स्नात्राभुमेकाद्विगतगदतर्ना दिव्यरूप यदीषम् ॥ ४० ॥
 सात्रिष्यकारा सकलातिहारिणी पञ्चापती यत्पदपङ्के त्रिता ।

ते पूज्यराजाभयदेवमुरयो यच्छन्तु मधे राकलार्थसम्पदम् ॥ ४१ ॥
 मृदुपक्षीयमूरे, प्राक्शिष्यः कञ्चोलापिणः । जिनवल्गुमनामाभूद्विरागी कर्मभेदतः ॥४२॥

तस्याभयगुरोः पार्श्वार्द्रुपमपत्ततोऽभवत् । जिनवल्गुमशिष्योऽथ सर्गमिद्वान्तपारगः ॥ ४३ ॥
 क्रमशोऽभयसूरीणा पट्टकन्दरकेयरो । जिनवल्गुमसूरीन्द्रो द्रव्यलिङ्गमनाईनः ॥ ४४ ॥

दुर्गे वैश्वित्रकूटे विकटभृङ्गटिका चण्डिका प्रत्यवौधि,
 अहे मानोन्नतश्रीकरणसदभरः सत्यवाग् वैभवेनः ।
 प्राग्निस्स्वो यत्प्रसादाद् धनपतिरभवत्सोऽपि सद्धारणो वै
 चक्रे तेनापि जने जिनगृहकरणाद्युन्नतिः शासनेऽस्मिन् ॥ ४५ ॥
 पिण्डविशुद्धिप्रकरण—कर्मग्रन्थाद्यनेकशास्त्रकृते ।
 तस्मै श्रीजिनवल्लभगुरवे सततं नमस्कृत्यै ॥ ४६ ॥
 तत्पट्टे मेरुगृङ्गे सुरतरुसदृशो जैनदत्तो मुनीन्द्रो
 दुर्गे श्रीचित्रकूटे ग्रहरसशशभृच्चन्द्रसंख्ये हि वर्षे ।
 भूतप्रेताः पिशाचा ग्रहगणनिवहा कुग्रहास्ते गृहीता
 येनासाध्येप (?) मन्त्रप्रबलवलयया योगिनीचक्रवालम् ॥ ४७ ॥
 यत्पूर्वं चै [व] पट्टे विनिहितमभवद् केनचिद्दिवतैर्न
 तस्मात्प्राकाशि मन्त्रैस्तदपि हि गुरुणा पुस्तकं मन्त्रगर्भम् ।
 येनाथो विक्रमाख्ये विपुलपुरवरेऽवारि मारिः प्रबोध
 लोका साहेश्वरीयास्तदपि हि गुरुणा स्थापिता जैनधर्मे ॥ ४८ ॥
 तस्मिन्नेव पुरेऽक्षसप्तगुणितं साधुव्रतिन्योः पृथग्
 एकस्यामपि दीक्षितं समभुवन्नन्द्यां क्षणात्सो प्यथ ।
 सिन्धोर्मण्डलमाससाद् च गुरुः पूर्णेन्दुवत्साधुभिः
 संसेव्यो जनचक्रवाकनयनानन्दं ददत् शुद्धधीः ॥ ४९ ॥
 तत्र श्रीसोमराजः सुरपतिसदृशो यत्पदान्भोजभृङ्ग—
 स्तुष्टस्तस्मै स दत्ते प्रवरामिति वरं ग्रामदेशे पुरेऽपि ।
 श्राद्धः श्रीमौस्त्वदीयो नरपतिसदृशः सत्प्रधानो गुरुर्वा
 भाव्यैकैकः स एष प्रकटतरमिहाद्यापि जागतिं गच्छे ॥ ५० ॥
 यो योगीन्द्रनिषेवितक्रमयुगः प्राचीनपुण्योदया—
 देवोक्तेश्च युगप्रधानपदवीं प्राप्तो जगद्विश्रुताम् ।
 यस्योपान्तमुपासते सुरगणा दासा इवाहर्निशं
 कल्पद्रुमरुमण्डले स जयति श्रीजैनदत्तो गुरुः ॥ ५१ ॥
 तेषां नामग्रहणाद्विपत्तितां यान्ति सकलविपदोऽपि ।
 अहिदपृष्टत्य्रभावो विद्युदपातो भवेद् भविनाम् ॥ ५२ ॥
 विस्तुरति कान्तिरतुला सुकला देहेऽपि मन्दिरे सकला ।
 कमला विस्मयजननी वदचे वाणी सुधोद्विरणी ॥ ५३ ॥
 श्रीअजयमेरुदुर्गे स्वर्गे गमनं च जातामिव येषाम् ।
 स्तूपै तिलकसुरूपं प्राचीदिक्तरुणीभालतले ॥ ५४ ॥

तत्रैव काले त्वद्य निर्गतौ गणः श्रीरुद्रपल्ल्यां जिनशेखरस्य हि ।
श्रीरुद्रपल्लीय इति प्रविद्धो ग्रहर्तुचन्द्रेन्दुमिते च वर्षे ॥ ५५ ॥

वर्षे राणखपक्षचन्द्रसुमिते श्रीपिक्रमाप्ये पुरे
यस्योदारमहोत्सवः समभयत् पट्टामिषेक-अणे ।

चंचच्चन्द्रनिमाननो नरमणी भालो विशालो गुणैः
मोऽय श्रीजिनचन्द्रसूरितिलको जीयान्मनोऽभीष्टदः ॥ ५६ ॥

योगिस्तंभितविभ्यमोचकत्तरस्तेना पुनः स्थापक-
श्रैत्ये यः ममभून्मृतेर्दशतयोत्तम्याशु त योगिनम् ।

तोपात्तेन ममपितामपि लशं विद्या न यः संभिनी-
मुस्मिष्टेत्यघनन मा भित्तां विनिहिता तेन क्रुध्यस्वानिनी (?) ॥ ६० ॥

गुरुणा पापशृक्तेन मुक्तो योगी गतोऽपि मः । मोऽय जिनरतिः सरिः सुरमृग्मिमप्रमः ॥ ६१ ॥
जीयाश्चिर चिरापु-कः पद्विंशद्गुणशेषाधि । पद्विंशद्वाद्देवा च विधिसार्गिनमोमणिः ॥ ६२ ॥

श्रीजावालपुरे महोत्सवपुतो वस्त्रपिपक्षणमृत्-
माने वर्षे दलातले सममयन्पट्टाभिषेकां महान् ।

श्रीजनेश्वरसूरिराजमुद्गटो वाग्निजितो स्वर्गुरोः
श्रीमाटागिकनेमिचन्द्रतनयः न पातु नो वाञ्छितम् ॥ ६३ ॥

श्रीमहाहारकारेऽखिलनगरगरे थाप्रियमद्वयेन्दु-
मरुत्ये वर्षे विशालद्राणिपितरणे श्रावकदीयमाने ।

पूज्यधिजाय योग्य स्वपदमलमचीकाणि य शशरेऽपि
त श्रीमत्सूरिगणं जिनपतिमुगुरुं मस्तुते पूज्यपादम् ॥ ५७ ॥

प्रतिष्ठामभयेऽन्वेद्युर्वेग्येकस्तत्र चागतः । प्रतिष्ठितानि निम्बानि स्तमयामाम विद्यया ॥ ५८ ॥

अत्रान्तरे सूरिगुणानभिन्ना महत्तरोयाच न नर्मवाचम् ।

बालेन चन्द्रेण तु चन्द्रिमा कति विमो प्रशश ज्ञान्ये कथ नहि ॥ ५९ ॥

[इति महत्तरावचनेन गुणमपंथा प्राप ।]

शिखिशिखिलोचनशशिमितवर्षे जिनविहसूरिराजपुरो ।

लघुगुणतगीयगणो जातो जावालपुरनगर ॥ ६४ ॥

चन्द्रातिनयनशशिमितवर्षे जावालपुरगृहादुगो ।

जनप्रसोषत्सुगुरेभयन्पट्टोन्मयो रम्यः ॥ ६५ ॥

शशियदनयनशशिमितवर्षे चितचन्द्रसूरिराजस्य ।

श्रीमज्जावालपुरेऽजनिष्ट पट्टामिषेकमहः ॥ ६६ ॥

मुनिमुनिनयनेनाकप्रमाणे हि वर्षे विपुलयनममृद्धे पचनारणे पुगेऽस्मिन् ।

पदमदमहिमोऽविन्नुता वन्य शन्या न चितरुजलसूरिभूगिस्तामाग्यनारी ॥ ६७ ॥

विमलगिरिरेऽस्मिन् यस्य शशोऽरेशाद् घनारणनतोया मान्तुङ्गो विहार ।

स्वरतरमन्तव्य सुप्रतिष्ठान्गोऽम्पदहवदुर्गिताप श्राणिना गर्वकालम् ॥ ६८ ॥

रंगतरंगा सदनै तुरंगा विशालनेत्रा युवती सरंगा ।

वाणीतरंगा वदने रसाला यस्य प्रसादात्किल संभवन्ति ॥ ६९ ॥

देवराजपुरे यस्य स्वर्गतस्य गुरोरथ । पूज्यमानं जनैः स्तूपं ददाति सकलं सुखम् ॥ ७० ॥

तद्यथा-निर्धनाय धनं दद्यात् नेत्रहीनाय लोचनम् ।

विद्याहीनाय सद्धिद्यामश्रोतृणां च सुश्रुतिम् ॥ ७१ ॥

राज्यार्थिनां च यद्राज्यं सुखं सुखार्थिनामपि । प्रयच्छत्युत्तमं भोगं भोगार्थिभ्यो विशेषतः ॥ ७२ ॥

कुष्ठिनां हरते कुष्ठं रोगं रोगवतामपि । कष्टं कष्टवतां पुंसां दौर्भाग्यं दुर्भगात्मनाम् ॥ ७३ ॥

—चतुर्भिः कलापकम् ।

शून्यं ग्रहार्थिदुमितेऽत्र वत्सरे श्रीदेवराजाख्यपुरे पदोत्सवः ।

जज्ञे च यस्याद्विरभूत्तरस्वती श्रिये स वः श्रीजिनपद्मसूरिराद् ॥ ७४ ॥

खखवेदचन्द्रमाने वर्षे पट्टाभिपेचनं यस्य ।

गुणलब्धिरत्नजलधिर्जीवाञ्जिनलब्धिसूरिगुरुः ॥ ७५ ॥

पञ्चन्यवेदेन्दुमिते हि वर्षे पट्टोत्सवो जेसलमेरुदुर्गं ।

यस्याभवद् द्रव्यघनव्ययेन सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनचन्द्रसूरिः ॥ ७६ ॥

भाणेन्दुवेदशशिभूत्प्रमिते च वर्षे श्रीस्तंभतीर्थनगरे समभूद् यदीयः ।

पट्टाभिपेकमहिमा गरिसालयोऽसौ जेजीयते गुरुजिनोदयसूरिराजः ॥ ७७ ॥

श्रीजिनेश्वरसूरीणां तदैव निर्गतो गणः । वैकट इति नाम्नासीद्विश्रुतोऽयं महीतले ॥ ७८ ॥

नेत्राक्षिनीरनिधिचन्द्रमिते च वर्षे श्रीपत्तने पुरवरे पदमाविरासीत् ।

श्रीमज्जिनोदयगुरोः पदपङ्कजालीमृङ्गाधितं नमत तं जिनराजसूरिम् ॥ ७९ ॥

तत्पट्टनन्दनवने विभाति जिनमद्रसूरिगुरफलदः ।

सकलमनोमतदाता शतशाखावर्धितो वाढम् ॥ ८० ॥

अत्रान्तरे देवकुलादिपाटके चन्द्रर्तुवेदेन्दुमिते च वत्सरे ।

शाखा गुरुश्रीजिनवर्धनानां शुक्राद्यपक्षे दशमीदिनेऽभूत् ॥ ८१ ॥

वाणार्पिवेदेन्दुमिते च वर्षे माघस्य राकादिवसेऽजनिष्ट ।

पट्टोत्सवो भाणसपष्टिकायां ननौमि तं श्रीजिनमद्रसूरिम् ॥ ८२ ॥

गुरोः श्रीजिनमद्रस्य महिमा वर्ण्यते कियान् । यद्भाले भासते भाग्यलक्ष्मीर्विस्मयकारिणी ॥ ८३ ॥

वामेतरे यत्करपङ्कजेऽस्मिन् चैक्रियते सिद्धिरसाङ्कुकेलिम् ।

विहारनीरोर्मय एव येषां संपत्तिश्शस्यानि समेधयन्ति ॥ ८४ ॥

दारिद्र्यं क्षीयते येषां सौम्यदृष्टिविलोकनात् । चन्द्रोदयाद्यथापैति संकोचः कुमुदाकरे ॥ ८५ ॥

तत्पट्टशक्रासने द्वराजो विराजते श्रीजिनचन्द्रसूरिः ।

श्रीपत्तने यस्य पदोत्सवोऽभूद्भाणेन्दुवाणेन्दुमिते च वर्षे ॥ ८६ ॥

श्रीमज्जेसलमेरौ समराकारितविहारमध्येऽस्मिन् । जिनचन्द्रसूरिगुरुणा चक्रे विम्बप्रतिष्ठा सा ॥ ८७ ॥

तत्पट्टपङ्कजयुगे अमरायमाणं ननम्यते जिनसमुद्रगुरु तमेनम् ।

नेत्रेक्षणेषुशशमूत्रामिते च वर्षे पट्टोत्सवो विपुलपुञ्जपुरे यदीयः ८८ ॥
दाने वित्तीयमाणे प्रपरा चक्रिरे प्रतिष्ठा ये ।

वाग्मटभेरुविहारे सारेजस्मिन् भूतले सुतराम् ॥ ८९ ॥

आदेशान्नृपमातलस्य मुदितो जाटाभिघः श्रीपरो
रत्नान्त्रीपुशाधिप्रमाणशरदि प्रोद्भूतपुण्योत्सवे ।

श्रीमण्टूकराभिधानपिपयेऽप्यानीतान् माघवे
श्रीमज्जेनलमेरुनः पुरवरे योधानके श्रीगुरून् ॥ ९० ॥

करसरोरुहगिद्विरमाधरान् सकललब्धिमहोदधिसुन्दरान् ।

गुरूणावलिभूषितविग्रहान् जिनसमुद्रगुरून्मतादमुन् ॥ ९१ ॥

—चतुर्भिः कलापकम् ॥

तेषा पट्टाम्बोजलीलामरालाः सूरीशाः श्रीर्जनहस्ता रमालाः ।

ज्ञामघसे नीलकण्ठोपमाना जेजीयता निर्जिताशेषमानाः ॥ ९२ ॥

श्रीविक्रमारत्ये नगरे विशाले राणेपुराणेन्दुमितौ समायाम् ।

ज्येष्ठस्य शुक्ले नवमीदिनेऽथ वारे गुरौ चारु शुभे पि लग्ने ॥ ९३ ॥

श्रीकर्मासिंहेन कृतोद्यमेन घनध्वयात्प्रीणितमर्षलोकः ।

येषा गुरूणा नतनागराणा पट्टोत्सवोऽकारि सुविस्तरोऽयम् ॥ ९४ ॥

अत्रान्तरे श्रीजिनदेवमुरैः श्रीआद्यपदीयगणो विभिन्नः ।

रेयाभिधाने नगरंऽननिष्ट बाणर्तुवाणेन्दुमिते च वर्षे ॥ ९५ ॥

कुर्वन्तः क्रमशो विहारमनघ देशेष्वनेकेष्वथ

श्रीमिवातविशेषकेऽतिविपुले श्रीआकरारत्ये पुरे ।

जगमुस्तत्र शक्रन्दरो नरपातिस्त्राज्यमारंभरा

श्रीमद्गुरपभ्रासिंहमचिर्वा श्रीमालचूडामणी ॥ ९६ ॥

तां स्वश्रीकलकाङ्क्षिणीं नितरर्णरत्यद्भुताटम्बरै-

श्रत्राते नगरप्रवेशनमह श्रीमद्गुरूणा मुदा ।

तेषा तत्रमतामयो गुणरता प्राचीनकर्मोदयात्

कोऽप्येको प्रतिरुमुष्ट दुष्टमनिकुं पश्यन् मर्दातुयून् (?) ॥ ९७ ॥

सौऽप्येगुः धगमाप्य पापहृदयं तत्राष्टवार इधी.

साहानम्य पुरोगदामिमगिला (?) चक्रे तत्रा तामथ ।

नो मन्वेत नृपस्त्वय किमपि प्रोत्राप्य इडाशय-

भेकः श्रेत्रपटो महानतिशयीहास्तीति मन्दायते ॥ ९८ ॥

तस्यैवं कथया तथा हयपतिश्चित्ते स विस्मापितः

किञ्चित् प्रष्टुमतः स्वयात्रि सुतुकात् गुरीन्निनाय हुनम् ।
तत्पृष्ठैर्गुरामिश्च सत्यवचनेपृक्तेषु रोषादसौ

चिक्षेपांहियुगे तदा नयवतां जंजीरमेपां हहा ॥ ९९ ॥
तावत्तस्य हृदि भ्रमे भवति गो स्वं चापरं वेच्यसा-

बुद्रावन्त्वथ पश्यति स्म भयदं किञ्चित्ततो चिन्त्यन् ।
ज्ञातं सैप सितारुन्नरः कलयतीतीदृक्कलां तद्द्विया

द्राग्भीतो गुरुमोक्षणाय नृपतिश्चादिक्षदारक्षकान् ॥ १०० ॥
जीरापल्लिपुरीशपार्थकृपया प्राचीनपुण्योदया-

दर्हदध्यानवशात्तदा जयजयारावे प्रवृत्ते सति ।
सार्धं दुःस्थितवन्दिपञ्चकशतैः श्रीसूरयो निर्ययुः

श्रीराहोर्वदनात् शशाङ्कचदतः साहीनकारोदरात् ॥ १०१ ॥
अमन्दानन्दजांकूरा उदगच्छन्मनोवनौ । विवेकिश्राद्धलोकानामुद्दीप्तं जिनशासनम् ॥१०२॥

गीतनर्तनवादित्रमङ्गलध्वनिपूर्वकम् । वर्धापनं च सर्वत्र गुरुणां मोचनेऽजनि ॥१०३॥ युग्मं
ते मेघराजकुलनन्दनकल्पवृक्षाः निःशेषजन्तुहृद्भीप्सितदानदक्षाः ।

श्रीजैनहंसगुरवोऽनघसंघलोके यच्छन्त्वमी सकलसिद्धिसुदारबुद्धिम् ॥१०४॥
श्रीसूरयोऽप्यथ परंपरया विहारं कुर्वन्त एव नगरं वरपत्तनाख्यम् ।

प्राप्ताश्विरेण करवस्त्रिपुचन्द्रसंख्ये वर्षे समाहितधियोऽत्र च ते स्वरापुः ॥१०५॥
तेषां पट्टसरोजे श्रीजिनमाणिवयसूरिगुरुहंसाः ।

विशदोभयपक्षधरा जयन्तु जगतीवराभरणाः ॥ १०६ ॥
थेषां पट्टमहोत्सवो जयजयारावः प्रवृत्तो महान्

श्रीवालाहिकगोत्रभूषणमणिः श्रीदेवरादकारितः ।
पक्षाब्देपुशशिप्रमाणशरदि श्रीपत्तनाख्ये पुरे

माघस्योज्ज्वलपञ्चमीवरादिने स्वोपार्जितार्थव्ययात् ॥ १०७ ॥
तैऽमी राजकुलाङ्गजाः सुगुरवः सूरीक्षराः साम्प्रतं

रत्नादेव्युदरांबुधौ शशधराः पुण्याब्जपाथोधराः ।
सौभाग्याद्भुतमालभाग्यतिलकात्पूर्वधिरेखांगताः

नन्दन्त्वम्बरसंस्थिताश्चिरतरं यावद्रवीन्दुध्रुवाः ॥ १०८ ॥
श्रीमज्जिनाज्ञाप्रतिपालकाय तीर्थकरैर्वन्द्यपदाम्बुजाय ।

संघाय भूयाच्छिवसाधकाय भद्रं जगज्जन्तुहिताय नित्यम् ॥ १०९ ॥
श्रीचन्द्रगच्छगाने जिनहंससूरिराज्ये कराष्टशरचन्द्रमितेऽथ वर्षे ।
चक्रे प्रशस्तिरिति बोधयशोर्थिनैषा किञ्चिन्मया-स्थविरसूरिपरंपरायाः ॥ ११० ॥

॥ खरतरगच्छ पट्टावली ॥



[१]

श्रीगौतमस्वामी गौरीग्रामवासी वसुभूति-
ब्राह्मण-पृथ्वीमार्या तयोः पुत्रः । गौतमगोत्रः ।
तस्य गृहस्थत्वे वर्ष ५०, छद्मस्थत्वे वर्ष ३०,
ततः श्रीवीरनिर्वाणसमये केवलमासाद्य १२
वर्षैः सिद्धः । एव सर्वायुः ९२ ॥

श्रीवीरपट्टे सुधर्मस्वामी ।

अग्निर्वश्यायनगोत्रः । कुलागसन्निवेशे
धम्मिल्लपिता भदिला माता । तस्य ५० वर्षान्ते
दीक्षा, ४२ वर्षे छद्मस्थत्व, ८ वर्षाणि केवल,
सर्वायुः १००; श्रीवीरात् २० वर्षैः सिद्धः ।
तत्पट्टे श्रीजन्मस्वामी ।

काश्यपगोत्रः, श्रीराजगृहीनगरी, ऋषभ-
दत्तपिता, धारिणी माता, तयोः पुत्रत्वेन
पंचमस्वर्गात् च्युत्वा समुत्पन्नः । ८ कन्या-
९९ कोटिकाचनत्यागी । गृहे वर्ष १६, व्रते
२०, केवले ४४; एवं वर्ष ८० परमायुः ।
वीरात् ६४ वर्षैः सिद्धः ।

ततः प्रभवः कात्यायनगोत्रः ।

ततः शर्यमवः । वीरात् ९८ वर्षैः स्वर्गतः ।
श्रीयज्ञोभद्रः ।

आर्यमंभूतविजयः ।

भद्रशास्त्रीस्वामी । उचमग्गहरकर्त्ता वीरात् १७०
भूलिभद्र । कोश्याप्रान्तोषक २१४ वर्षे
१४ पूर्वधरः ।

आर्यमहागिरिः । दशपूर्वधरो जिनकल्पतु-
लनाकृन् वीरात् २७० ।

आर्यसुहृस्तिः । अत्रातरं सिद्धमेनप्रति-
भाषितो बिक्रमादित्योऽजनि ।

वज्रस्वामी दशपूर्वधरः । तच्छिष्यात् नार्गेट,
चद्र, निर्गृति, विद्याधर, गच्छ ४ स्थापना ।
कालिकाचार्य । आर्यश्यामाऽपरनामा ।
वीरात् ४१३ ।

गर्दभिछोच्छेदको कालिकाचार्यो वीरात्
५०० वर्षैः ।

शान्तिसूरिः ।

हरिमद्रसूरिः । याकिनीधर्मपुत्रो होमानीत-
बौद्धप्रायश्चित्तार्थ १४४४ प्रकरणकर्त्ता वीरात्
५८५ वर्ष ।

सडिछसूरिः ।

आर्यसमुद्रसूरिः ।

आर्यमगु ।

आर्यधर्मः

आर्यमद्र ।

आर्यनयरादिः ।

दुर्गलिकापक्षः ।

देवद्विगणिसमाश्रमणः । सकलमिद्वान्त-
लैखनकृत बलभ्या वीरात् ९०० वर्षैः ।

गोत्रिदवाचक्रः ।

उमास्वातिनाचक्र* । प्रथमरतिप्रकरणकृत ।

देविदनाचक्रः ।

जिनमद्रगणिसमाश्रमणः । मर्षभाप्यकर्त्ता
९८० वर्षैः ।

शीलागाचार्यः । प्रथमद्वितीयागवृत्तिकर्त्ता ।

श्रीदेनसूरिः ।

श्रीनेभिचद्रसूरिः ।

१. श्रीउद्योतनसूरिः ।

२. श्रीवर्धमानसूरिः । गाजणादि १३ पाति-
साह—च्छत्रोद्दालक चंद्रावती—नगरी—स्थापक
विमल दंडनायक निर्मापित श्रीविमलवसतौ
ध्यानवलवशीकृतः वालीनाहक्षेत्रपालप्रकटित
वज्रमय आदीश्वरसूक्तिस्थापकः पण्मासाना-
चाम्लैः प्रकटीकृतधरणेन्द्रात् सूरिमंत्रशुद्धिकारी ।

३. श्रीजिनेश्वरसूरिः । सरसापत्तनवासीविप्रः
शिरसि मच्छिकादर्शनात् प्रतिबुद्धो गृहीत-
दीक्षः पत्तनमागतः । तत्र सोमपुरोहितगेहे
स्थितः । वेदक्रचासत्यापनेन रंजयित्वा
तत्साहाय्येनैव संवत् १०८० दुर्लभराजस-
भायां ८४ मठपतीन् जित्वा प्राप्तखरतरविरुदः ।

४. संवेगरंगशालाप्रकरणकारी श्रीजिन-
चंद्रसूरिः । अन्यदा श्रीजिनेश्वरसूरयः मालव-
देशे धारापूर्वा प्राप्ताः तत्र महाधनश्रेष्ठी—धन-
देवीपुत्रः अभयकुमाराख्यो देशनां श्रुत्वा प्रबु-
द्धो दीक्षां जग्राह । क्रमेण अभयदेवसूरयो जाताः
गीतार्थाः ।

५. अभयदेवाचार्यो ब्रह्माचाम्लकरणजात-
कुष्ठरोगो धवलकेऽनशनप्रतिपत्तये आहूताः सन्न-
संधो पि निशि शासनसुरी ज्ञापितस्य स्तंभनक-
ग्रामे सेठीनदीतटस्थ पंषरापलाशाधः स्थित
स्वयंदुग्धकपिलाधेनुपयःसिच्यज्ञान श्रीपार्श्व-
स्य 'जयतिहुअण'द्वात्रिंशतावृत्तैः प्रकटीकारको
गतकुष्ठो नवांगीवृत्त्यादि महाकृत्यकरणा-
दानीतगुर्वावलीमध्यनामा च ।

६. श्रीजिनवल्लभसूरिः । चैत्यवासि सुवर्णक-
चौलकवर्षिं जिनचंद्रसूरिशिष्यो दशवैकालिक-
सूत्रवाचनाद्वैराग्यवान् स्वयं गुरुं पृष्ट्वा अभयदे-
वसूरिमुपसंपन्नः । तदनु पिंडविशुद्धि—सार्ध-
ज्ञातक—पडशोतीत्यादिग्रंथकृत लेखरूपालिखित—

१२ कुलकप्रेषणेन दशसहस्रवागडी प्रति-
बोधकः स्वक्रियागुणप्रबोधितचित्रकूटीयचा-
मुंडः । नास्य परपक्षीयस्य पदं देयमिति सर्वसं-
घोक्त्या श्रीअभयदेवोक्तमेनं मुक्त्वा नान्यस्य
ददामीति देवभद्राचार्योक्त्या च १२ वर्षाणि
पट्टे शून्ये षट् मास ममायुरस्तीत्यङ्गृह्णतोपि प्रद-
त्तं संवत् ११६७ पदं । संवत् ११६८ चित्र-
कूटे स्वर्गप्राप्तिः ।

७. श्रीजिनदत्तसूरिः । संवत् ११३२जन्म ।
वाचकमंत्रीपिता । ब्राह्मदे माता । संवत् ११४१
दीक्षा गृहीता, ११६९पाटि वैशाखदि ६दिने ।
श्रीजिनदत्तसूरिः ज्योतिर्वली विक्रमपुरे मारि-
निवर्तनद्वारा प्रबोधित ५०० शिष्य दीक्षक एक
नंदां, उज्जयिन्यां महाकालप्रासादे स्तंभमध्या-
दौपधवलेन प्रथमानुयोगपुस्तकाकर्षकः । ६४
योगिनी, ५२ वीर क्षेत्रपालादिसाधकः । ओसी-
यानगरे ओसवंशीय लक्ष श्रावकप्रतिबोधकः ।
१५०० साधु, १००० साध्वीदीक्षकः । नाग-
देवश्राद्धाराद्वाविकालिखित 'दासानुदासा इव'
एतत्काव्यवाचनात् ज्ञातयुगप्रधानपदः । श्री-
जिनदत्तसूरीणां सप्तवराः योगिनीभिः प्रदत्ताः-
ग्रामे २ एकः श्रावको दीप्तिमान् भवति । १ ।
श्रावकाः प्रायेण निर्धना न भवन्ति । २ । श्रा-
वकस्य कुमरणं न भवति । ३ । साध्व्या रितु-
र्नायाति । ४ । गुरुनाम्ना शाकिनी न प्रभवति
। ५ । विद्युन्न परभवति । ६ । खरतर श्रा-
वको यो शूलताणे याति स पंच टंककान्
लात्वा समायाति । ७ । एते सप्तवराः । अथ
योगिनीभिः सप्तवराः श्रीगुरुपार्श्वान् मार्गिताः—
यः आचार्यो भवति स पंचनदीं साधयति ।
। १ । सूरिमंत्रं साधयति । २ । सामान्यसाधु-
र्द्विसाहस्री जापं करोति । ३ । श्राद्धा उभयकालं

सप्त स्मरणगुणनं कुर्वन्ति । ४ । आविका त्रिश-
 तीप्रभृतीः गुणति । ५ । मानं प्रतिगृहे आचा-
 म्द्वयं करोति । ६ । यती शक्या एकाशनं
 करोति । ७ । एते सप्त वराः योगिनीनां दत्ताः ।
 दिल्ली १, उम्पणी २, मरुअच्छि ३, अजमेरु ४, ए
 ओठपीठ । तत्र गच्छेद्येन नागंतव्यामिति उक्ता
 च संवत् १२११ आमाह मुदि ६ तिर्या अजय
 मेरां स्वर्गगमनं ।

—संवत् १२०५ रुद्रपत्न्या छत्रना सूरिपदं
 गृहीतं जिनप्रवेशेण ततो रुद्रोलियागणो जातः ।

८. श्रीजिनचन्द्रः । नरगणिमडितमालः । श्रीजि-
 नदत्तगुरिभिः स्वहस्तेन पट्टे स्थापितः । पूरंस्या
 दशवर्षाणि स्थित्वा गृहतीषाण श्राद्ध प्रतिनो-
 धकः । मध्वर्गार्जरायं आगच्छन् अंतरा आयात्
 भीमाल मदनपाल श्रीचंदादि दिष्टीमंथम-
 हाप्रहणेन तत्र गच्छन् प्रतोल्यां रजोहरणपाताजा-
 तच्छस्त्रत्रयं सं० १२२३ स्वर्गगामी । पोडी
 बाधेप्रपालस्तस्त्रूपे अधिष्ठाता तन्मणिश्च यो-
 गिना गृहीतः । मदनपालेन गुरुवृत्तां अनग्रनं गृ-
 हीतं । तुर्ये २ पट्टे श्रीजिनचंद्र गुरिनामस्थापन ।

९. श्रीनिनपात्तिगुरिः । प्राप्त १५ वर्ष पट्टो
 कव्शेकपत्तये ३६ यादजेता मालुगोत्रः । आ-
 सानगरे श्रीमालहाजीप्रतिष्ठाया योगिस्त्रंभित-
 प्रतिमानाः स्वरात्मपेपादुन्यापकः । ततीयमान-
 विषाद्रयाग्राहकः तापुलास्वादानात् । एतत्त-
 गच्छत्प्रधारः । परीक्षमहागिनेभिः पट्टदत्तावत्-
 पुत्रः । म० १२७७ प्रन्दाजनपुरे दिवं जगाम ।

१०. श्रीचिनेनगरगुरिः । मठारानेमिचद-
 पुत्रः । मरुदेवानागत प्राप्तगृत्विपदः । म०
 १३३१ स्वर्गगो ।

—अज्ञानं श्रीनिनप्रमगुरु श्रीजिनिहदूरे-
 स्त्रुपुत्रगणो ज्ञः ।

११. श्रीनिनप्रयोधसूरिः । दुर्गेपदप्रयोधग्रंथ
 व्याख्याता मं० १३४१ स्वर्गः ।

१२. श्रीजिनचंद्रगुरिः । छाजहडवंस्यः
 शतवर्षायुः चतुर्नृपप्रयोधकः फलिकालकेवलीति
 विरुदः । सं १३३६ जावालपुरे स्वर्गतः ।

—तदानीं राजगच्छ इति रचातिः ।

१३. श्रीजिनकुशलसूरिः । छाजहडगोत्रः
 मरुदेशे समीयाणउग्रामः । मत्रीजील्हागर जय-
 मीरीमाता । स० १३३० जन्म, स० १३४७
 टीला, सं० १३७७ पाटणनगरे पाटः । गनु-
 जये २२ वर्षाणि यानत् प्रतिदिनमोजित श्राद्ध
 पंचगत भीमपट्टी जेमलमेरुकारित श्रीवीरपा-
 र्श्वनाथप्रामाद सा० तेजपालपुत्र सा० धरणा,
 सा० रुद्रुआ कारित एतत्त-वसहीति नाम
 प्रसिद्ध श्रीमानतुगप्रतिष्ठाकारकः । उच्चाऽ-
 ध्यनि मार्गितजलदाता स० १३८९ देवराज-
 पुरे स्वर्गतः ।

१४. श्रीजिनपद्मसूरिः । श्रीतरुणप्रभरष्टम-
 वर्षेपि दत्तमृत्पिपदो वाग्मटमेरां गरिष्ठ श्री-
 वीरचेत्यालोकजाताध्वर्यपृष्टनिवे कृतगुट्टोपाध्याय
 'पूढाणदा नगही चक्षी अंदरि किउ माणी'
 इति वचनेन प्रगतितसूर्यभारः पत्तनममीपत्र-
 तिस्वरस्वतीनदीतीरे निशि प्रातर्मया मत्र-
 समक्षं कथं व्याख्याकर्तव्येति चिंताममनतर-
 मेव प्रत्यक्षीभूतपरम्पतीलब्धपरः 'अहंतो
 भगवत इद्रमहिताः' इति काव्य निर्माय व्या-
 ग्यानमरुगि । शालधरन्तृर्चोत्तरभ्यतीचिरुदः
 श्रीजिनपद्मसूरिप्रमृगुमापु १८ मर्ममंघोपि स्त-
 मर्नथिं माघे पतितः । नत्र चैत्ये पुग आदी-
 मृत पुन्यवीरय उप्रमिमा केनचिद्ग्राहेन मापितः
 म्बनधीलुट्टद मक्षणे किं गुगम, न मधयिजा ?
 तन्नेनं किंभिन्महादाय्य कगेपिगदा मर्जीफगे-

मि, त्वं श्रीअजितकायोत्सर्गं घटी ४५ निरंतरं
अखालितं कुरु अन्यथा आगतुं न शक्यते । तेन
तथा प्रतिपन्ने अष्टापदे गत्वा प्रासादाखालके
उपविश्य, तदा प्रस्तावे देवैः स्नात्रं प्रारब्धं च-
र्तते केनचिन्मृन्मयं कलशं स्नात्रकरणाय गृहीतं
स तस्य नालको भग्नः मुक्तश्च तेन तद्गृहीत्वा
पुनः खालं प्रविशता कलशमुखं भग्नं तथाविधं
समानीय श्राद्धस्य दत्तं श्राद्धेन हसितं 'जेह-
वउ घोषउ छइ, तेहवउ घोषउ आप्यउ' तच्छं-
टया सर्वेपि सज्जा जाताः तन्मध्येकेन गणी-
शेन श्रीजयसागरपाठकानामिदं सर्वं प्रोक्तं
तच्छटागंधो वार ६७ वस्त्रधौते पि न गतः ।
ततः तच्चैत्यस्थपुण्यवीरयक्षेत्रपालाभ्यां अन्य-
स्त्री भुज्यते चैत्यमध्ये अन्यस्त्री अन्यपार्श्वे
भुज्यते स्त्रशामीर्ष्या तस्य चपेटादिना मुख-
चक्रादिकरणं संघविज्ञप्तेन श्रीविनयप्रभपाठकेन
कीलिकया चैत्ये कीलितौ; पुण्यवीरमूर्तिरद्यापि
वर्तते । श्रीजिनपद्मसूरिः सं १४०० स्वः प्राप्तः
पत्तने ।

१५. श्रीजिनलब्धिसूरिः । नवलखाशाखाशृं-
गारः सैद्धान्तिकोऽवधानपूरको नागपुरे स्वर्ययौ ।

१६. श्रीजिनचंद्रसूरिः । उद्यतविहारी
स्तंभतीर्थे सं० १४१४ स्वर्गतः ।

१७. श्रीजिनोदयसूरिः । माल्हूसा०रूदपाल-
धारलदेपुत्रः । समरनामा । प्रल्हादनपुरतो यज्ञ-
यात्रांकृत्वा भीमपल्ल्यां कीलहूभगिन्या सह
गृहीत ईक्षः । सोमप्रभनामा । तरुणप्रभाचार्यतः
प्राप्तपदः । पंचतिथिकृतोपवासः । २८ साधुभिः
कृतसर्वदेशविहारः । क्रमेण शिष्यशिष्यणीसंघ-
पतिवाहुल्यकृत् कृताऽनेकपदस्थः सलपणपुरे
१२ ग्रामाऽमारिघोषणाकारि । सुरत्राण सनापत
देसलहरा सारंगस्पर्धया शत्रुंजये यात्राकारी मह-

द्वर्थासा.कोचरश्राद्धकृतप्रवेशोत्सवःपत्तने ङागा
आसाधीर स्तंभतीर्थे सा०कर्मसीगृहस्थितहस्ति-
शालः । पत्तने सं० १४३२ स्वः प्राप्तः

१८. तदानीं सतीर्थ्यो मानिताप्तपदो पि सं०
वेगडभ्राताधर्मवल्लभसहजज्ञानगणी सा० उदय-
करणवचसा उत्कटतया परित्यक्तः, स्थापितश्च-
लोकहिताचार्यः श्रीजिनोदयः । ततो मं-
त्रादिशक्तिमान् सरस्वतीपत्तनं गत्वा रुदेली-
यागणेशपार्श्वे प्राप्तमंत्रो जिनेश्वरनामा सं०
१४२२ जज्ञे । यतो वेगडागच्छः ।

१९. श्रीजिनराजसूरिः । मुखार्थात् ३६
सहस्रन्यायग्रन्थः । स्वर्णप्रभाचार्य १, भुवनरत्ना-
चार्य २, सागरचंद्राचार्य ३ स्थापकाः,
सं० १४६१ देवलवाटके स्वर्गतः ।

—सं० १४६१ देवलवाटके सा० नाल्हाकारित
नद्यां सागरचंद्राचार्य स्थापितेभ्यः कृतप्रांच्यादि
देशविहारेभ्यः संघगणोन्नतिकारिभ्यो जेसलमेरो
उत्थापित क्षेत्रपालदर्शित तुर्यव्रतशंकया तैरेव
पृथक्कृतेभ्यः श्रीजिनवर्धनसूरिभ्यः पीपलि-
यागणो जातः ।

ततश्च वा०शीलचंद्रगणिपार्श्वे पाठितानेकश्रुता
भाणशोलियाग्रामे सा०नाल्हाकारितनद्यां साग-
रचंद्राचार्यैरेव स्थापिताः आबूगिरिनारजेसल-
मेर्वादिषु प्रासादोपदेशकाः भावप्रभ—कीर्ति-
रत्नाचार्यादि स्थापकाः भांडागारादि लेखकाः
श्रीजिनभद्रसूरयः कुंभलमेरो सं० १५१४ स्वः
प्राप्ताः ।

२०. श्रीजिनचंद्रसूरयः । चम्मगोत्रीयाः ।
पत्तने सा० समरसिंह करितनद्यां श्रीकी-
र्तिरत्नाचार्यैः स्थापिताः । अर्बुदाचले नवफण-
पार्श्वप्रतिष्ठापकाः । श्रीधर्मरत्न—श्रीगुणरत्ना-
चार्यादिमहापदकर्तारः कर्मग्रन्थवेत्तारश्च । ५०

वर्षसर्वायुषः । स्वयंजातवमाना जेसलमेरी
सप्रभावस्तूपा अभुवन् सं० १५३७ ।

२१. श्रीजिनसमुद्रमूरयः । परीक्षगोत्रे
षागमटमेरी देका-डेवलदेसुताः । पुंजपुरे मडपतः
समागतः । मउठीया श्रीमालसोनपालकारित-
नंदां श्रीजिनचंद्रसूरिस्थापिताः । साधितपच-
नदिसोमरादियक्षाः । महाचारित्रिणोऽहम्मदा-
यादे सं० १५५५ स्वयं ययुः ।

२२. तत्पट्टे श्रीजिनहंममूरयः । सघर्मा-
मेघराज भार्या महिगलदे नदनाः । श्रीजेसल-
मेरी गृहीतदीक्षाः । तदनुक्रमेण सं० १५५६
ज्येष्ठसुदि ९ रवीं श्रीनिक्रमपुरे मरीक्षरकर्म-
सिंहप्रेषिताः कारणवशतः श्रीराजधान्यास्तत्र-
प्रभूताः पीरोजीलक्ष १ व्ययनिर्मितमहावि-
स्तरनद्या श्रीशातिसागराचार्यैदत्तसूरिमेत्रास्तदा
नीमकालजलदधर्षणसतुष्टसर्वलोकेभ्यः प्राप्त-
श्लाघाः । पूर्वं वा० धर्मरंगामिधाः श्री-
जिनहसमूरयस्ते चाऽन्यदा आगरातो भ्रातृ-
वेगराज पौमदत्तालंकृता सं० दृगरसीप्रहिता
कारणेन विहरतः प्राप्ता आगरास्थाने । तत्र च तेन
संभ्रुतानीताऽनेकसिंधुरसर्वसघमालिक-उत्तरान-
घाघमाननिःस्वनाघातोधादिनिस्तारपूर्वं प्रवे-
शोत्सने कृते पिशुनकृतविकृत्या पातिसाहि-
शकदगऽदेसतो धनलपुरे ३६ मासान् रोधेन
राक्षिता अपि स्वध्यानलेन समागतक्षेत्रपाल-
श्रीजेमलमेर्याय सभवनयाथाधिपत्यककृतसा-
हाय्याः तेनैव स्वयं ५०० बदिजर्नः सह
स्रुक्ताः स्थापितानेरुपाठकनाचनाचार्याः प्र-
तिष्ठात्रयकर्तारः । तदवसरे सं० १५६६
वर्षे नेनापि हेतुनाऽऽतैर्गार्तार्यशिशोमणिभिरपि
श्रीशातिमागराचार्यैरेव स्थापिताः स्वशिष्याः
श्रीजिनदेवमूरयः । तदृच्छः पृथग् जजे वडा-

आचार्यायाः । ततो बहुकालं स्वगच्छं प्रभाव्य
वर्षं ५७ सर्वायुषः श्रीपत्तने सं० १५८२ साव-
धाना एव स्वर्गयुः ।

२३. तत्पट्टे श्रीजिनमाणिक्यमूरयः । घोष-
डागोत्रे स. राउलरयणादे तनयाः तरेवे(?) सं०
१५८२ स्वहस्त कमल स्थापिता बलाहीदेवरा-
जेन कृतमविस्तरनंदीमहसः । कृतगुर्जराद्यने-
कदेशनिहाराः सस्थापितानेकोपाध्यायवाचना-
चार्यनराः । सातिशयाः । ध्यानरलेन जेसल-
मेर्यागतमुद्रलसैन्योपद्रवनिवारकाः । क्रमेण
देवराजपुरस्थ श्रीजिनकुशलसरियात्रां विधाय
परावर्तमाना देवराजपुरात् पचविंशति क्रोशे
स्वयं दक्षितस्वोपद्रवाः कृतानशनाः तत्रैव सं०
१६१२ वर्षे आपाठसुदि ५ स्वर्गलोकं प्राप्ताः ।

२४. तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरयः । रीहडगोत्रे
सा. सिरिबन्त सिरियादे सुताः । सं० १५९५
जन्म । सं० १६०४ दीक्षा । सं० १६१२ वर्षे
भाद्रपद ९ दिने गुरुरारे श्रीजेसलमेरुनगरे
राउल श्रीमालदेकृत महोत्सने भट्टारक श्री-
जिनचंद्रसूरिः स्थापितः । सं० १६१३ वर्षे
श्रीविक्रमनगरे चैत्रमासे सप्तमीदिने क्रियो-
द्धारः कृतः । तेषां त्वेतेऽनदाताः श्रीफलुद्यां ता-
द्य-चैत्यतालकोटघाटकृत, पुनः सं० १६४३ वर्षे
ताद्य-धर्मसागरकृतग्रथच्छेदकृत, श्रीअकबर-
साहिप्रतिगोधकारी, तत् साहिवचसा युगप्रधा-
नपदधारी, सं० १६५२ वर्षे नानगानीकृत
महोत्सवेन पचनदीना साधकः । सिंधु १, चयप
२, वनाह ३, रावी ४, घारउ ५, इति पच
नद्यः, तथा स्तभतीर्थे वर्षं यावत् मीनरक्षाकृत,
श्रीज्येष्ठपूर्वाणि सर्वत्राष्ट दिनानि यावदमारि
प्रवर्तकः, श्रीशत्रुजयादि तीर्थेषु चैत्यप्रतिमा
प्रतिष्ठाकृत, श्रीविक्रमपुरे ऋषभनिनादिप्रभूत-

विंशप्रतिष्ठाकृतः श्रीसाहिसलेमराज्ये ताद्यकृत श्री
जिनशासनमालिन्यतः श्रीसाधुविहारो निपि-
द्धः साहिना तत्रावसरे श्रीउग्रसेनपुरे गत्वा साहिं
प्रतिबोध्य च साधूनां विहारः स्थिरीकृतः ।
तदा लब्धसवाई युगप्रधान बडागुरुरिति विरुदो
येन गुरुणा । एवमवदाता भूयांसः संति सुप्र-
सिद्धाः । तेषां निर्वाणं श्रीत्रीलाडापुरे सं० १६७०
वर्षे आसूवदि २ दिने स्तूपस्थापना । तस्य
वारके श्रीसागरचंद्रसूरिसंताने अनुक्रमेण भाव-
हर्षत्वरयो निर्गता इति ।

२५. तत्पट्टे श्रीजिनसिंहसूरिः । चोपडागोत्री

कोटिद्रव्यव्ययेन मंत्रिराज श्री कर्मचंद्रेण
कृतनंदीमहोत्सवः श्रीलाभपुरे । तन्निर्वाणं तु
श्रीभेदतटे सं० १६७४ वर्षे पोसवदि १३दिने ।

२६. तत्पट्टे गुरुश्रीजिनराजसूरिः । सं० १६७४
वर्षे फागुणसुदि ७ दिने संघपति श्री आसक-
र्णेन कृतनंदीमहोत्सवः । तस्मिन्नेव दिने श्री
जिनसागरसूरीणामाचार्यपदस्थापनेति । कीयत्
काले निर्वासिताः । श्रीमलिनराजसूरिः ।

२७. तस्य पट्टे श्रीजिनरत्नसूरिः । श्रीजिनर-
त्नसूरिवारके श्रीरंगविजयो निर्वासितः ।

२८. श्रीजिनचंद्रसूरिश्चिरं जीयात् ॥



॥ खरतरगच्छ पद्मावली ॥

[२]

प्रणिपत्य जगन्नाथ उर्ध्वमानं जिनोत्तमम् । गुरुणा नामधेयानि लिख्यन्ते स्वविशुद्धये ॥

१. इह तावत् त्रिभुवनजनोपकर्ता, सकलपापसंतापहर्ता, परमाशिनकरः, चरमतीर्थकरः, पञ्चमगतियामी श्रीमहावीरस्वामी संजातः । स च इक्ष्वाकुकुलममुद्भवः, काश्यपगोत्रीयः, क्षत्रियकुण्डग्रामनगराधीश्वरः, मिद्वार्यस्य राज्ञः त्रिशलाराज्याश्च पुत्रः, चैत्र शु० दि० त्रयोदश्यां जातजन्मा । तस्य महावीरस्य चतुर्दशसहस्रप्रमिताः साधवः, पद्मिंशत्सहस्रप्रमिताः साध्यः, एकोनपष्टि (५९) सहस्राधिककलक्षप्रमाणाः श्रावकाः, अष्टादशसहस्राधिकलक्षत्रयप्रमाणाः श्राविकाश्च बभूवुः । तथा पुनर्नव गच्छाः, एकादश गणधरा संजाताः । स भगवान् त्रिंशद् वर्षाणि यावत् गृहनामे स्थित्वा, एकपक्षाधिकानि सार्धद्वादश (१२) वर्षाणि छद्मस्थपर्यायम्, पक्षाधिकपण्मासन्यूनानि त्रिंशद् वर्षाणि केवलपर्याय च प्रपाल्य-सर्वायुर्द्धिममति (७२) वर्षाणि पूरयित्वा चतुर्थैरकस्य त्रिषु वर्षेषु सार्धाष्टमासेषु शेषेषु विद्यमानेषु पापाया नगर्या कार्तिकाऽमावास्याया मुक्तिं प्राप्तः ।

—तत्पश्चे गौतमस्वामी, स च इन्द्रभूतिनामा गौतमगोत्रीयः, बसुभूतिनाह्वणस्य पूज्याश्च ब्राह्मण्याः पुत्रः, पञ्चाशद् वर्षाणि गृहवासे स्थित्वा, त्रिंशद् वर्षाणि छद्मस्थपर्यायम्, द्वादश वर्षाणि केवलपर्याय च प्रपाल्य-सर्वायुर्द्धिममति (९२) वर्षाणि पूरयित्वा वीरनिर्वाणाद् द्वादशवर्षव्यतिक्रमे मोक्षं प्राप्तः । किञ्च, गौतमस्वामिदीक्षिताः सर्वेऽपि साधवः केवलवान् संप्राप्य मुक्तिमेव गताः न पञ्चादेकोऽपि स्थितः तेन अग्रे गौतमस्वामिपरपरा न व्यूढाः, अत एवाज्यं पट्टेषु न गण्यते । तथा ' पञ्चमारकग्रान्ते दुष्यसहसूरिं यावत् सुधर्मणः परंपरा स्यात्पठति ' इति वीरवाक्याद् अन्येऽपि सुधर्मस्वामिबर्जितैर्नगणधरैर्निजनिजाशिम्यसन्ततिं सुधर्मस्वामिने समर्प्य अनशन कृत्वा मुक्तिर्धार्जिता ।

इह वीरजानोत्तचित्तचतुर्दश वर्षः जमालिनामा प्रथमो निहन्यो जातः, तथा षोडशवर्षस्तिष्यगुमनामा द्वितीयो निहन्यो जातः ।

२. अथ वीरस्वामिपुत्रे सुधर्मस्वामी सजातः, कोष्ठाकश्यामनासी, अग्निवैश्यापनगोत्रः, धम्मिल्लस्य पितृभेदिलायाश्च मातुः पुत्रः । पञ्चाशद् (५०) वर्षाणि गृहे, द्विचत्वारिंशद् (४२) वर्षाणि छद्मस्थमाने, अष्ट (८) वर्षाणि केवलित्वे च स्थित्वा-सर्वायुर्धर्मशतं (१००) प्रपाल्य वीरनिर्वाणाद् त्रिंशति (३०) वर्षव्यतिक्रमे शिवाश्रमं प्राप ।

३. तन्पश्चे श्रीजम्बूस्वामी, स च पञ्चमस्वर्गाच्युत्वा राजगृहनगर्या काश्यपगोत्रीय-ऋषभदत्तनामा श्रेष्ठं, धाण्णी भार्या, तपोः पुत्रत्वेन उत्पन्नः । एकदा समये सुधर्मस्वामिपार्श्वे धर्मं श्रुत्वा, वैगम्य प्राप्य, स्वगृहं चागन्व रात्रौ नक्षत्रगिणीता अष्टौ कन्याः प्रतिबोधयन्, तालोद्पादिनीविद्यामपञ्च वीरपञ्चशतीपरिवृत वीर्यायै गृहे प्रविष्टं प्रभवनामानं राजकुमार

प्रतिबोधितवान् । ततः प्रभाते अष्टौ (८) कन्याः, अष्टौ (८) तासां मातरः, अष्टौ (८) च पितरः, स्वस्य मातापितरौ (२) च—एवं २६, तथा चौरपञ्चशतीसहितः प्रभवः (५०१)—सर्वे (५२७), तैः सह जम्बूकुमारो दीक्षां जग्राह । तथा नवनवति (९९) कोटिस्वर्णमुद्राणाम्, अष्टकन्यानां च परित्यागी बभूव । स च षोडश (१६) वर्षाणि गृहे, विंशति (२०) वर्षाणि छद्मस्थभावे, चतुश्चत्वारिंशद् (४४) वर्षाणि केवलपर्याये च स्थित्वा—अशीतिवर्षाणि (८०) सर्वायुः प्रपाल्य, वीराच्चतुष्पष्टि (६४) वर्षव्यतिक्रमे मोक्षं गतः, चरमकेवली जातः । तथा जम्बूस्वामिनि मुर्वितं गते दशवस्तुविच्छेदो जातः । तथाहि—१. मनः पर्यायज्ञानम्, २. परमावधिज्ञानम्, ३. पुलाकलाधिः, ४. आहारकशरीरम्, ५. क्षपकश्रेणिः, ६. उपशमश्रेणिः, ७. जिनकाल्यमार्गः, ८. परिहारविशुद्धिः, सूक्ष्मसंपरायम्, यथाख्यातचरित्रम्, ९. केवलज्ञानम्, १०. सिद्धिगमनं चेति ।

४. तत्पट्टे प्रभवस्वामी, स च जयपुरवासिनो विन्ध्यस्य राज्ञः पुत्रः, कात्यायनगोत्रीयः, त्रिंशद् (३०) वर्षाणि गृहे, चतुश्चत्वारिंशद् (४४) वर्षाणि सामान्यव्रते, एकादश (११) वर्षाणि आचार्यपदे स्थित्वा—सर्वायुः पञ्चाशीति (८५) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् पञ्चसप्तति (७५) वर्षव्यतिक्रमे स्वर्गं जगाम ।

५. तत्पट्टे शय्यंभवसूरिः, स च राजगृहवास्तव्यो वात्स्यगोत्रीयः, एकदा यज्ञं कुर्वन् श्रीप्रभवस्वामिप्रेषितसाधुद्वयमुखाद् 'अहो! कष्टं २, तत्त्वं न ज्ञायते परम्' इति वचनं श्रुत्वा संजातसंशयः स्वगुरुं प्रति खड्गमुत्पाद्य तत्त्वं पप्रच्छ । तदानीं तेन गुरुणा प्रोक्तम् 'यज्ञस्तम्भस्य अधो वर्तमानं शान्तिनाथविम्बमस्ति, इति तत्त्वम्' ततस्तद्दर्शनाद् जैनधर्मे संजातरुचिः शय्यंभवमद्वुः सगर्भा स्त्रियं मुक्त्वा प्रभवस्वामिपार्श्वे व्रतं जग्राह । क्रमेण 'योग्योऽयम्' इति ज्ञात्वा गुरुभिराचार्यपदे स्थापितः । अथ प्रश्नात् संजातजन्मनः, कदाचित् स्वपार्श्वे समागतस्य मनकनाम्नो निजपुत्रस्य पण्मासावधि आयुर्जात्वा तन्निमित्तं सिद्धान्तादुद्धृत्य दशवैकालिकशास्त्रं कृतवान्, ततः संघाग्रहेण आगामिकालभाविप्राणिनामनुकम्पया च सूरिभिः स ग्रन्थो न पश्चात् प्रक्षिप्तः । तथा श्रीशय्यंभवसूरिरष्टाविंशति वर्षाणि गृहे, एकादश (११) वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रयोविंशति (२३) वर्षाणि सूरिपदे स्थित्वा—सर्वायुर्द्विषष्टि (६२) वर्षाणि प्रपाल्य वीराद् अष्टानवति (९८) वर्षैः स्वर्गभाग् जातः ।

६. तत्पट्टे श्रीयशोभद्रसूरिः, स च तुङ्गीयायनगोत्रीयो द्वाविंशति (२२) वर्षाणि गृहे, चतुर्दश (१४) वर्षाणि सामान्य व्रते, पञ्चाशद् (५०) वर्षाणि आचार्यपदे—सर्वायुः षडशीति (८६) वर्षाणि प्रपाल्य वीराद् अष्टचत्वारिंशदधिकैकशत (१४८) वर्षव्यतिक्रमे स्वर्गभाक् ।

७. तत्पट्टे सप्तम श्रीसंभूतिविजयः, स च माठरगोत्रीयो द्विचत्वारिंशद् (४२) वर्षाणि गृहे, चत्वारिंशद् (४०) वर्षाणि सामान्यव्रते, अष्टौ (८) वर्षाणि युगप्रधानत्वे स्थित्वा सर्वायुर्नवति (९०) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् षट्पञ्चाशदधिकैकशत (१५६) वर्षातिक्रमे दिवं गतः ।

८. तत्पट्टे द्वितीयो लघुगुरुभ्राता भद्रबाहुस्वामी तु प्राचीनगोत्रीयः, प्रतिष्ठानपुरवासी, तथा

व्यन्त्रीमृताऽभिनीतनिज-चन्द्रपुराहमिहिरकृतसंघोषद्रुमनिवारणार्थमुपसर्गहरस्तोत्रकरणेन प्रच-
नस्य महोपकारकृत्, तथा पुनश्चतुर्दशपूर्ववित्, कल्पमूर-आमश्यकनिर्धुक्त्वादिप्रभूतग्रन्थकार-
सजातः । स च पञ्चचत्वारिंशद् (४५) वर्षाणि गृहे, सप्तदश (१७) वर्षाणि सामान्यव्रते, चतुर्दश
१४ वर्षाणि युगप्रधानत्वे स्थित्वा-सर्वायुः पद्मसति (७६) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् सप्तत्य-
धिकैकशत (१७०) वर्षव्यतिक्रमे स्वर्गमाक् ।

९. तत्पट्टे नमः स्थूलमद्रस्वामी, स च पाटलिपुत्रनगरनमनन्दभूपस्य मन्त्री शकडालः;
भार्या लाल्लदेवी, तयोः पुत्रः, गाँतमगोत्रीयः, कोश्याप्रतिषोषकः, सर्वजनप्रासिद्धः, चतुर्दश-
पूर्वविदा चरमः, तत्र दश पूर्वाणि वस्तुद्वयेन न्यूनानि सूत्रतोऽर्थतत्र पपाठ, अन्त्यानि चत्वारि
पूर्वाणि तु सूत्रतएव अधीतवान् नाऽर्थतः, इति बृद्धवादः । स त्रिंशद् (३०) वर्षाणि गृहे, त्रिंशति
(२०) वर्षाणि सामान्यव्रते, एकोनपञ्चाशद् (४९) वर्षाणि सुरिपटे स्थित्वा-नमनसति (९९)
वर्षाणि सर्वायुः प्रपाल्य वीराद् एकोनत्रिंशत्यधिकद्विशतवर्षः (२१९) स्वर्गं प्राप्तः ।

—अत्रान्तरे वीगनिर्वाणात् चतुर्दशाधिकद्विशत (२१४) वर्षैः आपाटाचार्याद् अव्यक्तनामा
वृतीयो निहननो जातः । तथा विंशत्यधिकद्विशत (२२०) वर्षरथमिनात् सामुच्छेदिकनामा
चतुर्थो निहननः । तथा पुनष्टात्रिंशतिअधिकद्विशत (२२८) वर्षैः गङ्गनामा एकस्मिन्
समयेऽनेकक्रियोपयोगनादी पञ्चमो निहननोऽभूत् ।

१०. तत्पट्टे दशम आर्षमहागिरिः, एलापत्यगोत्रीयो जिनकल्पिकतूलनामारूढः, पुनस्त्रिंशद्
(३०) वर्षाणि गृहे, चत्वारिंशद् (४०) वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रिंशद् (३०) वर्षाणि सुरिपटे-
सर्वापूर्वशत (१००) प्रपाल्य स्वर्गमाक् ।

११. तत्पट्टे आर्षगुहस्तिगुरिः। वामिष्ठगोत्रीयः। तेन किल पूर्वभने द्रमकीभूतः सप्रतिजीनः
प्रराज्य त्रिलण्डाधिपतित्व प्रापितः, येन सप्रतिना श्रीवीरात् पञ्चत्रिंशदधिकद्विशतवर्षं राजपदं
प्राप्य मपादलखप्रतिमा-नरीनजिनप्रामाटाः कारिताः, सपाटकोटिविम्बानि कारयित्वा प्रतिष्ठा-
पितानि, त्रयोदशसहस्रप्रभितजीर्णोद्धारः कारिताः, पञ्चनवसहस्रप्रमाणाः पित्तलकाः प्रतिमाः
कारिताः, मत्स्यतानि मत्स्यगण भण्डिताः, द्विसहस्रप्रभिता धर्मशास्त्राः कारिताः, पुनर्यः प्रति-
दिन नवीनोत्पादितैरुच्यत्यर्षापनिः। श्रुत्वा दन्तधावन कृतवान् । किंनहुनोक्तेन, यस्त्रिलण्डा-
मपि भेदिना जिनगृहप्रतिमादिभिर्भण्डितामकरोत् । तथा माधुनेपधारिनिजकिंनरजनप्रेषणेन
अनर्षेदशैःपि माधुविहार कारितवान् । श्रीश्रेणिकस्य राज्ञः सप्तदशे पट्टे मजातः । तथा श्रीगु-
रुभिरन्येऽपि अमर्त्यानुहमान्नाया यद्गो भव्याः प्रतिरोपिताः । ते च गुग्गुः त्रिंशद् (३०) वर्षाणि
गृहे, चतुर्दशति (२४) सामान्यव्रते, पञ्चचत्वारिंशद् (४६) वर्षाणि गुरिपटे-सर्वायुगेक वर्षशत
(१००) प्रपाल्य श्रीवीरात् पञ्चदशधिकवर्षशतद्वये (२६५) व्यतिक्रान्ते न्यर्गमाजो जाताः ।

१२. श्रीआर्षगुहस्तिपट्टे श्रीगुम्भितगुरिः, स च शेट्टियः गृग्मिन्त्रज्ञापान् 'कोटिकाः' पुनः
काकन्यां नगर्यां जातत्वात् 'कारन्दिकः' इति बिरुदप्राप्तं विशेषणञ्चम । तथा व्याघ्रपत्य-
गोत्रिणः, स च एवत्रिंशद् (३१) वर्षाणि गृहे, सप्तदश (१७) वर्षाणि सामान्यव्रते, अष्टचत्वारिंशदे

(४८) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुः पणवति (९६) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् त्रयोदशाधिकवर्षशतत्रये (३१३) व्यतीते स्वर्गभाग् जातः । तत एव अस्माकं संप्रदायः 'कोटिकगच्छः' इति प्रसिद्धः ।

१३. सुस्थितसूरिपट्टे इन्द्रदिन्नसूरिः

१४. तत्पट्टे श्रीदिन्नसूरिः । १५. तत्पट्टे श्रीसिंहगिरिर्जातिस्मरणज्ञानवान् ।

—अत्रान्तरे पादलिप्ताचार्यो वृद्धवादिस्सूरिश्च बभूवतुः, तथा सिद्धसेनदिवाकरोऽप्यासीत्, येन उज्जयिन्यां महाकालप्रासादे रुद्रलिङ्ग स्फोटयित्वा कल्याणमन्दिरस्तवेन पार्श्वनाथविम्बं प्रकटीकृतम् । विक्रमादित्यश्च प्रतिबोधितः । विक्रमराज्यं तु श्रीवीरात् सप्तत्यधिकवर्षशतचतुष्टये (४७०) व्यतीते संजातम् । विक्रमादित्यराजा वीरात् (४७०) वर्षे जातः ।

१६. तत्पट्टे श्रीवज्रस्वामी, यो बाल्यादपि जातिस्मरणभाक्, गौतमगोत्रीयः, तुम्बवनाग्रामवासी धनगिरि—सुनन्दयोः पुत्रः, श्रीसिंहगिरिसूरीणां हस्ताद् दीक्षां गृहीत्वा, तत्पार्श्वे एकादशाङ्गानि अधीत्य, द्वादशस्य दृष्टिवादाङ्गस्य अध्ययनाय दशपुराद् उज्जयिन्यां श्रीभद्रगुप्ताचार्यसमीपं ययौ । तत्र गुरुभिर्दश पूर्वाणि पाठितानि । पुनर्य आकाशगामिविद्यया संघरक्षाकृत्, दक्षिणस्यां दिशि बौद्धराज्ये जिनेन्द्रपूजानिमित्तं पुष्याद्यानयनेन प्रवचनप्रभावनाकृत्, देवाऽभिवन्दितः, दशपूर्वविदामपश्चिमः, तथा पणवत्यधिकचतुश्शत (४९६) वर्षान्ते जातः, अष्टौ वर्षाणि गृहे, चतुश्चत्वारिंशद् (४४) वर्षाणि सामान्यव्रते, षट्त्रिंशद् (३६) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुरष्टाशीति (८८) वर्षाणि प्रपाल्य श्रीवीरात् चतुरशीतिअधिकपञ्चशत (५८४) वर्षान्ते स्वर्गभाक् । इतो वज्रशाखा संजाता । तथा वज्रस्वामितो दशपूर्व—चतुर्थसंहननादिव्युच्छेदः ।

—अत्र श्रीवीरात् (५४४) वर्षे रोहशुभात् त्रैराशिकः षष्ठो निहनवो जातः ।

—तथा वीरात् सपादपञ्चशतवर्षातिक्रमे (५२५) शत्रुञ्जयोच्छेदो जातः, ततः सप्तत्यधिकपञ्चशत (५७०) वर्षैर्जावडोद्धारोऽभूत् ।

१७. तत्पट्टे श्रीवज्रसेनाचार्यः, स च उत्कोशिकगोत्रीयः । एकदा द्वादशदुर्भिक्षान्ते श्रीवज्रस्वामिवचनात् सोपारके गत्वा जिनदत्तश्रेष्ठा, तद्भार्या ईश्वरीनाम्नी, तया लक्षमूल्यान धान्यमानीय पार्कार्थमग्नौ स्थापितायां हण्डिकायां विपनिक्षेपं क्रियमाणं दृष्ट्वा, 'प्रातः सुकालो भावी' इत्युक्त्या विपनिक्षेपं निवार्य नागेन्द्र—चन्द्र—निर्वृति—विद्याधर—नामकांश्चतुरः सकुटुम्बानिभ्यपुत्रान् प्रव्राजितवान् । तेभ्यश्च स्वस्वनामाङ्कितानि चत्वारि कुलानि जातानि । स श्रीवज्रसेनसूरिः प्रान्ते चन्द्रमुनिं स्वपदे निवेश्य, अनशनं च विधाय स्वर्गभाक् ।

१८. तत्पट्टे श्रीचन्द्रसूरिः, स च सप्तत्रिंशद् (३७) वर्षाणि गृहे, त्रयोविंशति (२३) वर्षाणि सामान्यव्रते, सप्त (७) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुः सप्तपष्टिवर्षाणि (६७) प्रपाल्य स्वर्गभाक् । इतश्चान्द्रकुलमिति प्रसिद्धम्, अत एवाऽस्माकं गच्छेऽधुनाऽपि वृहद्दीक्षावसरे "अम्हणं कोडिओ गणो, वयरी साहा, चं कुलं, अमुगगगनायगा, अमुगमहोज्ञाया संति, महत्तरा नत्थि" इति पाठं नवीनशिष्यं प्रति आचार्यपार्श्वस्थिता वृद्धाः श्रावन्ति । इति संप्रदायः ।

—अत्राऽवसरे श्रीआर्यरक्षितसूरिर्महाप्रभावकः संजातः, स च दशपुरनगरे सोमदेवः पुरो-
हितः, रुद्रसोमा भार्या, तयोः पुत्रः साधिकनवपूर्वाणि वज्रस्वामितोऽधीत्य निजकुटुम्बं समग्रमपि
प्रतिबोध्य जिनशासनप्रभावनाकृजातः । तच्छिष्यः श्रीदुर्वलिकापुष्यमित्रसूरिर्वभूव । अत्रान्तरे
वीरात् (५८४) वर्षे गोष्ठामाहिलः सप्तमो निह्नवो जातः । तथा (६०९) वर्षेदिगम्बरोत्पातिः ।

१९. ततः श्रीसमन्तभद्रसूरिर्वनवासी । २०. ततः श्रीदेवसूरिर्वृद्धः ।

२१. ततः श्रीप्रद्योतनसूरिः । २२. ततः श्रीमानदेवसूरिः शान्तिस्तवकर्ता ।

२३. ततः श्रीमानतुङ्गसूरिर्भक्तामर-भयहरणस्तोत्रयोः कर्ता । २४. ततः श्रीवीरसूरिर्जातः

—अत्रान्तरे श्रीदेवद्विगणिक्लमाश्रमणो महाप्रभावको जातः, स च वीरात् अशीत्यधिक-
नवशतवर्षैः (९८०) बह्वर्षीनगर्या समस्तसाधुमीलनेन सर्वमिद्वान्तलेखकारी । देवाद्धिं यावद्
एकं पूर्वं स्थितमिति बृद्धसंप्रदायः ।

—पुनस्तदैव श्रीकालिकाचार्यो जातः, स च वीरवाक्याद् भाद्रपदशुक्लपञ्चमीतश्चतुर्ध्या
श्रीपर्युषणापर्वं जानीतवान्, ततएवाऽद्यापि चतुरशीतिगच्छेषु चतुर्ध्या सावत्सरिकप्रतिक्रमणं
क्रियते । अथ च वीगत् त्रिनवत्यधिकनवशतवषैः (९९३), तथा विक्रमसंवत्सरात् प्रयोर्वि-
शत्यधिकपञ्चशतवषैः (५२३) सजातः ।

—पुनः कालिकाचार्यद्वयं प्राग् जातम्, तत्राऽऽद्यः प्रज्ञापनाकुद् इन्द्रस्याग्रे निगोदविचा-
रवक्ता श्यामाचार्यापरनामा, स तु वीरात् (३७६) वर्षेर्जातः । द्वितीयो गर्दभिछोच्छेदकः, स तु
वीरात् (४५३) वर्षेर्जातः ।

—पुनस्तदैव श्रीजिनभद्रगणिक्लमाश्रमणो जातः, स च विशेषावश्यकादिभाष्यकर्ता ।
तच्छिष्यः शीलाङ्गाचार्यः प्रथम-द्वितीयाङ्गवृत्तिकृत् ।

तदैव पुनः श्रीहरिभद्रसूरिर्वभूव, स च जात्या ब्राह्मणः, सर्वशास्त्रपारगः
सन् प्रतिब्रा चक्रे 'यदुक्तस्थार्थमहं न वेद्मि तच्छिष्यो भवामि' इति । तत एकदा
साध्वीमुखाद् एका गायत्र्या श्रुत्वा तदर्धमनवमुच्यमानः प्रतिज्ञावशात् साध्वीदणितगुरु-
समीपे व्रत जग्राह । जैनशास्त्राण्यपि सर्वाणि अधीत्य आचार्यत्व प्राप्तः । तस्य हस-परमह-
सनामानौ द्वौ शिष्या परशासनरहस्यग्रहणार्थं बौद्धाचार्यसमीप गतौ, तत्राऽध्ययनं कृत्वा,
स्वपुस्तकं गृहीत्वा स्थानं प्रत्यगच्छन्तौ 'तौ जैनौ' इति ज्ञात्वा पश्चादागतैर्नौद्वैर्मारिता ।
अथैतत् स्वरूपं विज्ञाय कोपाक्रान्तेन गुरुणा तप्ततैलपूरितं कटाहं स्थापयित्वा मन्त्रपलाचतुश्च-
त्वारिंशदधिकचतुर्दशशत (१४४४) बौद्धा आकर्षिताः, तदानीं याकिनीमहत्तरावचनैःको-
पाटुपशान्तेन गुरुणा बौद्धा मुक्ताः । ततः पापशुद्धयर्थमाकर्षितानां द्वैर्प्रमाणानि (१४४४) पूजाप-
श्चाशकादिप्रकरणानि कृतानि । एतवधाः श्रीहरिभद्रसूरयो जाताः ।

२५. ततः (श्रीवीरसूरिपुत्रे) श्रीजयदेवसूरिः । २६. ततः श्रीदेवानन्दसूरिः ।

२७. ततः श्रीनिक्रमसूरिः । २८. ततः श्रीनरसिंहसूरिः ।

२९. ततः श्रीसमुद्रसूरिः । ३०. ततः श्रीमानदेवसूरिः ।

३१. ततः श्रीविद्युधर्मसूरिः । ३२. ततः श्रीजयानन्दसूरिः ।

३३. ततः श्रीरविप्रभसूरिः । ३४. ततः श्रीयशोभद्रसूरिः ।

३५. ततः श्रीविमलचन्द्रसूरिः । ३६. तत्पट्टे श्रीदेवसूरिः ।

—तस्य च सुविहितमार्गाचरणात् 'सुविहितपक्षगच्छ' इति प्रसिद्धिर्जाता ।

३७. तत्पट्टे नेमिचन्द्रसूरिः । ३८. तत्पट्टे उद्घोतनसूरिः ।

—अस्माच्चतुरशीतिगच्छस्थापना जाता । तत्स्वरूपं यथा—एकदा श्रीउद्घोतनसूरिं महाविद्वांसं शुद्धक्रियापात्रं च विज्ञाय अपरेषां त्र्यशीति (८३) संख्यानां स्थविराणां त्र्यशीतिशिष्याः पठनार्थं समागताः, तान् श्रीगुरुः सदीत्या पाठयति स्म । तस्मिन्नवसरे अम्भोहरदेशे स्थविरमण्डल्यां बृद्धस्य जिनचन्द्राचार्यस्य चैत्यवासिनः शिष्यो वर्धमाननामा सिद्धान्तमवगाहमानश्चतुरशीत्या (८४) ऽऽशातनाधिकारे आगते सति गुरुं प्रत्येवमुक्तवान्—'भोः ! स्वामिन् ! चैत्ये निवसतामस्माकमाशातना न टलति, ततोऽयं व्यवहारो मे न रोचते' इत्युक्तं श्रुत्वा गुरुणा यथा यथा विप्रतारितोऽपि अयं स्वश्रद्धातो न परिभ्रष्टः । ततः श्रीउद्घोतनसूरिं शुद्धक्रियावन्तं श्रुत्वा तत्पार्श्वे समागत्य तस्यैव शिष्यो जातः, तदुपसंपदं च गृहीतवान् । ततः श्रीगुरुभिर्योगादिकं वाहयित्वा सर्वे सिद्धान्ताः पाठिताः, क्रमेण योग्यं ज्ञात्वाऽऽचार्यपदं दत्त्वा, गच्छवृद्ध्यादिलाभं विज्ञाय उत्तराखण्डे विहारार्थमाज्ञा दत्ता । ततो वर्धमानाचार्योऽपि गुर्वादेशं स्वीकृत्य तत्र गतः । अथ श्रीउद्घोतनसूरिस्त्र्यशीति (८३) शिष्यपरिवृतो मालवकदेशात् संघेन सार्धं शत्रुंजये गत्वा ऋषभेश्वरमभिवन्द्य पश्चाद् बलमानो रात्रौ सिद्धवडस्याधोभागे स्थितः, तत्र मध्यरात्रिसमये आकाशे शकटमध्ये बृहस्पतिप्रवेशं विलोक्य एवमुक्तवान्—'साम्प्रतमीदृशी वेला वर्तते, यतो यस्य मस्तके हस्तः क्रियते स प्रसिद्धिमान् भवति' । अथैतत् श्रुत्वा त्र्यशीत्याऽपि शिष्यैरुक्तम्—'स्वामिन् ! वयं भवतां शिष्याः स्मः, यूयमस्माकं विद्यागुरवः, ततोऽस्मदुपरि कृपां विधाय हस्तः क्रियताम्' । ततो गुरुभिरुक्तम्—'वासचूर्णमानीयताम्' । तदा तैः शिष्यैः काष्ठच्छगणादिचूर्णं कृत्वा गुरुभ्य आनीय दत्तम्, गुरुभिरपि तच्चूर्णं मन्त्रयित्वा त्र्यशीतेः शिष्याणां मस्तके निक्षिप्तम्, ततः प्रभाते श्रीगुरुभिः स्वस्य अल्पायुर्ज्ञात्वा तत्रैव अनशनं कृत्वा स्वर्गतिः प्राप्ता । अथ ते त्र्यशीतिरपि शिष्याः आचार्यपदं प्राप्य पृथग् विहारं चक्रुः । अथैकः स्वशिष्यो वर्धमानसूरिः, त्र्यशीतिश्च इमेऽन्यदीयाः शिष्याः—एवं चतुरशीतिगच्छाः संजाताः ।

३९. उद्घोतनसूरिपट्टे श्रीवर्धमानसूरिः, स च षण्मासान् यावद् आचास्लतपः कृत्वा, धरणेन्द्रं समाराध्य, श्रीसीमन्धरस्वामिपार्श्वे तं प्रेष्य सूरिमन्त्रं शुद्धं कारितवान् । तथा पुनरेकदा विहारं कुर्वन् सरसाख्ये पत्तने समागत्यौ । तस्मिन्नवसरे सोमब्राह्मणस्य द्वौ पुत्रौ शिवेश्वर—बुद्धिसागरनामानौ, एका च कल्याणवतीनाम्नी पुत्री, एवं त्रयोऽप्येते सोमेश्वरमहादेवस्य यात्रार्थं गच्छन्तः सरसाभिधाने पत्तने समाजग्मुः, तत्र सरस्वत्यां नद्यां स्नात्वा रात्रौ तत्रैव सुप्ताः, ततोऽर्धरात्रिवेलायां सोमेश्वरदेवः प्रादुर्भूय तेभ्य इत्युवाच—'भोः ! प्रसन्नोऽहम्, मार्गयत मनोवाञ्छितं वरम्; ततस्तैर्वैकुण्ठे याचिते स प्राह—'भो ! ममाऽपि वैकुण्ठं नास्ति, ततो भवद्भ्यः कुतो ददामि,

परं यदि भवता वैकुण्ठेऽऽस्ति, तर्हि श्रीवर्धमानसूरेश्वरसेवा कार्या, स एव एको वैकुण्ठदाता-
स्ति' इत्युक्त्वा देवोऽदृश्यो बभूव । ततः प्रातःकाले ते त्रयोऽपि जना नद्या स्नात्वा उपाश्रय-
मागत्य च गुरुभ्यो वैकुण्ठममार्गयन् । ततो गुरुभिरपि एकस्य आर्तुर्भस्तकशिखाया स्थितां
मर्त्यां दर्शयित्वा, दयामयं श्रीजिनधर्मं द्योतयित्वा सर्वासिद्धान्तपारगा कृताः । शिवेश्वरस्य
जिनेश्वर इति नाम कृतम् । एकदा जिनेश्वरेण उक्तम्—'स्वामिन् ! यदि गुर्जरदेशे गम्यते
तदा भूयसी धर्मोन्नतिः स्यात्' । ततो गुरुभिरुक्तम्—'तत्र हीनाचारिणामसयमिनो चैत्य-
धासिना बहुः प्रचारोऽस्ति, ते उपद्रवं कुर्युः, ततस्तत्र न गम्यते ।' तदा पुनर्जिनेश्वरेण
उक्तम्—'स्वामिन् ! युक्तामयात् किं वत्स परित्यज्यते, ततो मद्यम्, बुद्धिसागराय च तत्र
गमनार्थमाज्ञा दीयताम् ।' अथ गुरुभिरपि एतत् श्रुत्वा जिनेश्वर-बुद्धिसागराम्यामाचार्यपद
दत्त्वा गुर्जरदेशं प्रति विहारज्ञा दत्ता । तावपि गुर्वाङ्गया त देशं प्रति विहारं चक्रतुः । तथा
गुरुभिः कल्याणवती साध्वी महत्तरा कृता । तथा पुनः श्रीवर्धमानसूरिभिरुक्तं योदशसुरप्राणच्छ-
श्रोहालक-चन्द्रान्तनीनगरीस्थापक-पोरवाडह्यातीय-श्रीविमलमन्त्रिण प्रतिनोच्य श्रीअर्जुदाचले
छिन्नजैनतीर्थस्य पुनः प्रवृत्त्यर्थमुपदेशो दत्तः पर तत्रत्यब्राह्मणैरुक्तम्—'इदमस्माकं तीर्थ-
मास्ति, अत्र जिनप्रासादो न भवति' इति । ततो गुरुभिः पुष्पमाला मन्त्रापित्वा, विमलमन्त्रिणे
दत्त्वा च प्रोक्तम्—'भो ! मन्त्रिन् ! ब्राह्मणकन्याहस्ते इमां मालां प्रदाय ब्राह्मणानामग्रे इति
वक्तव्यम्—'अस्मिन् परंते यं भूमौ एषा माला पतति, तत्र अस्माकं तीर्थमास्ति ।'
अथ मन्त्रिणा यथा गुरुभिरुक्तं तथैव कृतम् । ततश्च यत्र माला पतित्वा तत्र
कलश-सल्लर्यादिपूजोपकरणसहितं प्रतिमात्रयं प्रादुर्भूतम्—तत्रैका वज्रमयी श्रीआदिनाथप्रतिमा,
द्वितीया अम्बिकामूर्तिः, तृतीया धालीनाथसत्रपालमूर्तिः—इति । अथैव कृतेऽपि ब्राह्मणैः
पुनरुक्तम्—'भवता देवोऽस्ति, पर देवगृहं नास्ति, ततो देवस्यैव पूजा कार्या, देवगृहं तु न कारये-
त्तव्यम्'—इति । तदा विमलमन्त्रिणा द्रव्यजलेन निम्ना वशीकृताः, स्वर्णमुद्रास्तरणं निधाय भूमिं
गृहीत्वा तत्र श्रवणमदेनप्रासादः कारितः । अष्टादशकोटि-त्रिपञ्चाशच्छतप्रमितं द्रव्यं व्ययीकृतम् ।
तत्र अद्यापि 'विमलवसही' इति प्रसिद्धिरस्ति । ततः श्रीवर्धमानसूरिः म० १०८८ प्रतिष्ठां
कृत्वा प्रान्तेऽनशनं गृहीत्वा स्वर्गं गतः ।

४०. तत्पुत्रे श्रीजिनेश्वरसूरिः, स च बुद्धिसागरणं मार्गं मरुदेशाद् विहारं कृत्वा अनुक्रमेण
गुर्जरदेशे अणहिल्लपुरपत्तने समागतः । तत्र दुर्लभराजस्य पुरोहितः शिवशर्मानामा ब्राह्मणः
स्वमातुलोऽस्ति, तद्गृहं प्राप्तः । अथ स पित्रो नृश्यान् तर्क-व्याकरणादि शास्त्राणि पाठयन्
एकस्य वेदपदस्य अशुद्धमर्थमुवाच । तदा श्रीजिनेश्वरसूरिभिः प्रोक्तम्—'अस्य पदस्य अयमर्थो
न भवति, भगवतिः कथमित्यं पाठयते ?' । तदा पित्रेण उक्तम्—'भवता वेदार्थपरिज्ञानं कुतः ?
चेद् भवेत् तर्हि मराड्डीरेव अस्य अर्थो वाच्यः' इति । अथैतद् वचः श्रुत्वा गुरुभिर्ये केऽपि पुरो-
हितस्य सदेहा अमूवन् ते सर्वेऽपि निरस्ताः । ततः पुरोहितेन पृष्टम्—'को भवता निरासः ?
कथं भवतः पिता ?' इति । तदा गुरुभिर्वाराणसी नगरी, सोमदत्तब्राह्मणश्च प्रोक्तम् । तदा

तेन ज्ञातम् एतौ मम भागिनेयौ, ततश्च बहुमानपुरस्सरं स्वगृहे राक्षितौ । अथैषा वार्ता चैत्यवासिभिः श्रुता, चिन्तितं च स्वचित्ते यतो जिनेश्वरसूरित्राऽऽगतोऽस्ति, स तु संवेगरङ्गनिमग्नगात्रः परमशुद्धक्रियापात्रमस्ति, वयं तु शिथिला हीनाचारिणः स्मः, ततोऽयं केनाऽपि प्रकारेण नगराद् निष्कासनीयः, अन्यथाऽस्माकं निन्दा भविष्यति, इत्येवं विचिन्त्य क्रियाद्धैत्यवासिभिः संभूय दुर्लभनृपाय प्रोक्तम्—‘महाराज ! अस्मिन् पुरे दिल्लीतो ग्रन्थिच्छोटकाः समागताः सन्ति, ते च भवत्पुरोहितस्य गृहे तिष्ठन्ति’ । अथ राज्ञा एतद् वाक्यं श्रुत्वा पुरोहितमाहूय पृष्ठम्—‘भवद्गृहे चौरा आगताः श्रूयन्ते’ । तेनोक्तम्—‘राजन् ! मद्गृहे तु शुद्धाचारवन्तः, सन्मार्गसंचारिणो मुनीश्वराः सन्ति, न चौराः । किंतु ये केऽपि तेषु चौरव्यपदेशं कुर्वन्ति त एव चौराः’ । तदा राज्ञा आचारदर्शनार्थं जिनेश्वरसूरय आहूताः, आगता गुरवो राजसभायाम्, आस्तृतं वस्त्रं दूरीकृत्य, रजोहरणेन भूमिं प्रमार्ज्य, ईर्ष्यापथिकीं प्रतिक्रम्य, स्वकम्बलमास्तीर्य स्थिताः । अथैतत् सदगुर्वालोकनाद् आनन्दितेन राज्ञा उक्तम्—‘सन्मार्गधारका एवंविधा एव भवन्ति’ । तथा पुनर्भूषेन एतेभ्यो विरुद्धं चैत्यवासिनामाचारं दृष्ट्वा गुरुभ्यो मुनीनामाचारः पृष्ठः । तदा जिनेश्वरसूरिभिः प्रोक्तम्—‘अस्माभिर्मुखात् किं कथ्यते, भवतां देवाधिष्ठितं सरस्वतीभाण्डागारमस्ति, तत्र सर्वमतस्वरूपनिवेदकानि पुस्तकानि सन्ति, ततो निर्मलजलेन कृतस्नानां कुमारीं कन्यकां संप्रेष्य भाण्डागारात् पुस्तकमानायितव्यम्’ । तदा राज्ञा तथैव कृते सति दशवैकालिकपुस्तकं कन्याया हस्ते आगतम्, तच्च राजसभायामानीतम्, ततो गुरुभिः प्रोक्तम्—‘इदं पुस्तकमेतेषां चैत्यवासिनामेव हस्ते देयम्, एते एव वाचयन्तु’ ततो वाचयद्भिस्त्वैः साध्याचारपत्राणि मुक्तानि, तदानीं गुरुभिरुक्तम्—‘राजसभायां दिवसे चौर्यं जायते’ । राज्ञा पृष्ठम्—‘तत् कथम्?’ तदा तैरुक्तम्—‘एभिः पत्राणि मुक्तानि !’ राज्ञोक्तम्—‘तर्हि यूयमेव वाचयत’ । गुरुभिरुक्तम्—‘नाऽत्र अस्माकं कार्यम्, पक्षपातरहितैर्ब्राह्मणैर्वाचनीयम्’ । ततो ब्राह्मणेभ्यः पुस्तके दत्ते सति तैर्यथार्थं वाचितम् । तदा शास्त्राऽविरुद्धाचारदर्शनेन जिनेश्वरसूरिमुद्दिश्य ‘अतिखराः’ इति राज्ञा प्रोक्तम् । ततः ‘खरतर’ विरुद्धं लब्धम् । तथा चैत्यवासिनो हि पराजयप्रापणात् ‘कुंवला’ इति नामधेयं प्राप्ताः । एवं सुविहितपक्षधारकाः जिनेश्वरसूरयो विक्रमतः १०८० वर्षैः ‘खरतर’ विरुद्धधारका जाताः । तथा पुनरेकदा मरुदेवीनाम्नी साध्वी चत्वारिंशद् दिनानि यावदनशनं कृतवती, प्रान्ते निर्जरां कारयद्भिर्जिनेश्वरसूरिभिरुक्तम्—‘स्वकीयमुत्पत्तिस्थानं ज्ञापनीयम्’ ततः सा गुरुवचः स्वीकृत्य, कालं कृत्वा देवपदं प्राप्ता । अथैकदा स देवः सीमन्धरस्वामिवन्दनार्थं गच्छन् ब्रह्मशान्तियक्षं प्रत्युवाच—‘भवता जिनेश्वरसूरीणां पार्श्वे गत्वा ‘मसट सट’ इत्येतानि पञ्चाक्षराणि कथनीयानि, एषामर्थं स्वयमेव गुरवो ज्ञास्यन्ति’—इति । तदा यक्षेणाऽऽगत्य तान्यक्षराणि कथितानि, ततो गुरुभिस्तेषामर्थो निगदितः । तद्यथा—

मरुदेवी नाम अज्ञा गणिनी जा आसिः तुह्य गच्छम्मि ।

सग्गम्मि गया पढमे देवो जाओ महड्डीओ ॥

टक्कलयम्मि निमाणे दो सागरआउसो समुप्पण्णो ।

समणेसस्स जिणेसरसूरिस्स इम कहिज्जासु ॥

टक्कउरे जिणउन्दणनिमित्तमिहागएण देवेण ।

चरणम्मि उज्जमो भो कायव्वो किं च सेसेहिं ॥

एवंविधाः श्रीजिनेश्वरसूरयः प्रान्तेऽनशन कृत्वा स्वर्गं गताः ।

४१. तत्पट्टे एकचत्वारिंशत्तमः श्रीजिनचन्द्रसूरिः, स च सगेगरङ्गशालाप्रकरणकर्ता । तथा पुनरेकदा दिल्लीनगरे समागतः, तत्र 'त्वं दिल्लीपतिर्भविष्यसि' इति प्रागुक्त-गुरुवचनस्मरणात् सप्राप्तनिवेकेन मीजदीनसुरत्राणेन प्रवेशोत्सवः कृतः, तथा धनपालश्रीमालगृहे निवासः कारितः । तदानीं धनपालः श्रावको बभूव, तत्सम्बन्धिनोऽप्येऽपि बहवः श्रीमालगोत्रीयाः श्राद्धाः, प्रतिजो-धिताः, केचिदन्यत्रातीयराज्याधिकारिणोऽपि श्राद्धाः जाताः, तेभ्यः पातिसाहिना बहु महत्त्वं दत्तम्, ततस्तेषां 'महतीयाण' इति गोत्रस्थापना कृता । तद्गोत्रीयाः श्रावकाः 'जिन नमामि, वा जिन-चन्द्रगुरुं नमामि, नान्यम्' इति प्रतिज्ञान्तो बभूवुः । एवंविधाः श्रीजिनचन्द्ररयो महाप्रभवका जाताः । तदैव च पदमावत्या प्रत्यक्षीभूय प्रोक्तम्—'चतुर्थपट्टे सातिशयं 'जिनचन्द्र' इति नाम दातव्यमिति' । तत एवेयं व्यवस्था जाता ।

४२. तत्पट्टे द्विचत्वारिंशत्तमः श्रीअभयदेवसूरिः, स च जिनचन्द्रसूरीणा लघुगुरुभ्राता, परमसैवगी च संजातः । तत्संन्धो यथा—धारापुर्यां धननामा श्रेष्ठी, तद्भार्या धनदेवी, ततोऽभय-कुमारनामा पुत्रो जातः । स चैकदा जिनेश्वरसूरीणा पार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रतिबुद्धः दीक्षा च जग्राह । क्रमेण संकलशास्त्राऽव्ययनेन गीतार्थो जातः, आ चार्थपदं च प्राप्तः । तत एकदा व्याख्याने शृङ्गारादिनवरसान् पोषितवान् तदा सभा सर्वाऽपि आनन्दातिशयसपन्ना जाता । परं गुरुभिरैकान्ते उपालम्भो दत्तः । ततोऽभयदेवसूरिणाऽऽत्मशुद्धयर्थं प्रायश्चित्ते याचिते गुरुभिरुक्तम्—'तक्रोपर्या-ऽऽगतजलेन दुभरकेण च यप्मासौ यावद् आचाम्लतपः कार्यम् । तदा पापभीरुणा अभयदेवसूरिणा गुरुवचसा तथैव कृतम्-पडपि विकृतयः परित्यक्ताः । परमत्यन्तनीरसाहारकणात् प्राक्तनकर्मोद-याच्च शरीरे गलत्कुष्ठरोगः समुत्पन्नः । तथापि औषधं न करोति । ततः प्रष्टुदो रोगः, तदा अनश-नचिकीर्षया गुरवः सघाग्रहेण धनलकाऽभिधाने नगरे प्राप्ताः । अथ त्रयोदश्या अर्धरात्रे शासनदे-वतया प्रकटीभूय प्रोक्तम्—'स्वामिन् ! नैवैता सूत्रकु-रूकुटिका उन्मोहय' । भगवानाह—'कराद्गुलि-गलनाद् उन्मोहयितुं न शक्नोमि' । तदा देवी प्राह—'अघाऽपि त्वं चिरकाल वीरतीर्थं प्रमावधि-ष्यसि, नयाङ्गीवृत्तिं च विधास्यसि । ततो रोगगमनोपायं शृणु—स्तम्भनकपुरसमीपे सेडिकानदी-तीरे खखरपलाशतले श्रीपार्श्वनाथप्रतिमाऽस्ति, तत्र प्रत्यहमेका गाँः समागत्य प्रतिमामूर्धि क्षीरं क्षरति । तत्र सधेन सार्धं गत्वा स्तुतिः कर्तव्या । प्रतिमा प्रादुर्भविष्यति, तत्स्नात्रजलेन नीरूक् शरीरं भविष्यति' इत्युक्त्वा देवी अदृश्या बभूव । ततः प्रातः काले प्रत्यासन्ननगर-प्राग्मेभ्यः समागतेन तद्भ्रामवासिना च श्रावकमयेन सार्धं तत्र गत्वा 'जय तिहुयण' इत्यादि नमस्कारद्वारिंशिका कृता । तत्र यावता 'फणफणकार' इत्यादि षोडशकाव्येन स्तुतिः

प्रारब्धा, तावता पार्श्वप्रतिमा प्रकटीवगूव । ततः श्रावकैः स्नात्रपूजां कृत्वा स्नपनजलेन गुरुणां शरीरं सिक्तम्, तदा रोगनिर्मुक्ताः काञ्चनवर्णशरीराः सूरयो वभूवुः । ततः श्रावकैस्तत्र उत्तुङ्गतोरणं देवगृहं कारितम् । तदा श्रीअभयदेवसूरिभिः तत्र पार्श्वप्रतिमा स्थापिता । तच्च स्तम्भनकनाम्ना महातीर्थं प्रसिद्धम् । तथा 'जय तिहुयण' स्तोत्रस्य अन्तिमे गाथाद्वये धरणेन्द्र-पद्मावत्याऽऽकर्षणमन्त्रो गोपित आसीत् । तद् गाथाद्वयमपवित्रभूताः स्त्रीवालकादयो यत् किञ्चित् कार्येऽपि गुणयन्ति स्म, तदा जनः पुनरागमनेन खिन्नयाऽधिष्ठायकदेव्या गुरवे उक्तम्—'स्वामिन् ! एतद्गाथाद्वयं भाण्डागारे स्थापनीयम्, महति कार्ये गुणनीयम् । तथा इयं नमस्कारत्रिंशिका संख्यायां प्रतिक्रमणस्यादौ सदैव गुणनीया' इत्युक्त्वा देवी गता । ततो गुरुभिस्तथैव कृतम् । तथा नवाङ्गानां वृत्तयो विहिताः । एवंविधाः शासनप्रभावकाः श्रीअभयदेवसूरयः प्रान्ते गुर्जरदेशे कप्पडवणिजग्रामेऽनशनं कृत्वा चतुर्थं स्वर्गं प्राप्ताः ।

४३. तत्पट्टे त्रिचत्वारिंशत्तमो जिनवल्लभसूरिः, स च प्रथमं कूर्चपुरगच्छीय-चैत्यवासिजिनेश्वरसूरैः शिष्योऽभूत् । ततश्चैकदा दशवैकालिकं पठन् सावर्ध्यापधादिकं कुर्वाणम्-अतिप्रमादिनं स्वगुरुं विलोक्य उद्विग्नचित्तः संजातः । तदनन्तरं स्वगुरुमापृच्छ च शुद्धक्रियानिधीनामभयदेवसूरीणां पार्श्वेऽगात् । तदुपसंपदं गृहीत्वा तेयासेव शिष्यश्च संजातः । क्रमेण शास्त्राण्यऽधीत्य महाविद्वान् बभूव । तथा पिण्डविशुद्धिप्रकरण-गणधरसार्धशतक-पडशीति-प्रमुखाऽनेकशास्त्राणि कृतवान् । तथा दशसहस्रप्रमितवागाडिकश्राद्धान् प्रतिबोधितवान् । तथा पुनश्चित्रकूटनगरे श्रीगुरुभिः चण्डिका प्रतिबोधिता । सूरिमन्त्रवलसधनीभूत साधारणश्राद्धेन कारितस्य द्विसप्तति (७२) जिनालयमण्डित श्रीवीरस्वामिचैत्यस्य प्रतिष्ठा कृता । तथा तत्रैव पुरे संवत् सागर-रस-रुद्र-(११६७) मिते श्रीअभयदेवसूरिवचनाद् देवभद्राचार्येण तेषां पदस्थापना कृता । ततस्ते षण्मासान् यावद् आचार्यपदं भुक्त्वा अनशनेन कालं कृत्वा स्वर्गं प्राप्ताः । तद्वारके च 'मधुकरखरतर' शाखा निर्गता । अयं प्रथमो गच्छभेदः । तथा शासनदेवतावचनात् तत एव आचार्यस्य नाम्न आदौ सप्रभावस्य जिनपदस्य स्थापना प्रवृत्ता ।

४४. तत्पट्टे चतुश्चत्वारिंशत्तमः श्रीजिनदत्तसूरिः, स च वाल्मिगमन्त्रि-वाहडदेव्योः पुत्रः, धंधूकाभिधनगरवासी, हुंवडगोत्रीयः, सं० ११३२ वर्षे लब्धजन्मा, सोमचन्द्रसूलनामा, सं० ११४१ वाचक धर्मदेवपार्श्वे गृहीतदीक्षाकः, तथा सं० ११६९ वैशाख व० दि० षष्ठी-दिने चित्रकूटनगरे श्रीदेवभद्राचार्येण सूरिमन्त्रं दत्त्वाऽचार्यपदे स्थापितः—'जिनदत्तसूरि' इति नामस्थापना कृता । परंतु प्रागेकदा सारंगपुरे कुंवरपालोपाध्यायस्य निर्जरा कारिता आसीत् । स हि कालं कृत्वा देवपदं प्राप्य तदानीमेव प्रादुर्भूय वभाषे 'भोः सोमचन्द्र ! त्वमाचार्यपदं प्राप्स्यासि, परं मुहूर्तप्रायं वर्तते । तत्राद्ये मुहूर्ते मृत्युः, द्वितीये गच्छभेदः, तृतीयं शुभम् । ततस्तृतीये मुहूर्ते पदं प्राप्य, इत्युक्त्वा देवोऽदृश्यो जातः परं कथंचित् दैववसात् द्वितीये मुहूर्ते पदं जातं, तेन संवत् १२०४ जिनशेखराचार्यतो रुद्रपल्ल्यां रुद्रपल्लीय-खरतर-शाखा भिन्ना । अयं द्वितीयो गच्छभेदः । पुनरेकदा श्री जिनदत्तसूरिश्चित्रकूट देवगृहे

वज्रस्यंभस्थितं नानामंत्राम्नायमय पुस्तकं भद्रप्रलेन प्रकटीकृत्य गृहीतवान् । तथोज्जयिन्या महाकालप्रामादस्तभस्य, द्वितीय सिद्धसेनदिपाकरस्य पुस्तकं प्रथमागतविधयाऽऽकृष्य जग्राह । तथा एकदा उज्जयिन्या व्याख्यानमध्ये श्रात्रिकारूप विधाय छलनार्थमागताश्चतुःपष्टियोगिन्यः पट्टकेषु निवेश्य भद्रप्रलेन क्रीलिताः, ततो व्याख्यानाते पट्टकेभ्य उत्यातुमशस्ताः सत्यो गुरु प्रत्युचुः—स्वामिन् ! भद्रता वय प्रत्युत च्छलिताः, जय कृपा विधाय निमोच्यास्तदा गुरुभिर्भचन गृहीत्वा योगिन्यो मुक्ताः । अथ तामिर्भरं सप्तकं दत्तं तद्यथा—

- १ प्रतिग्राम सरतर श्राद्धो दीप्तिमान् भविष्यति ।
- २ प्रायेण सरतर श्रात्रको निर्यनो न भावी ।
- ३ संघे कुमरणं न भविष्यति ।
- ४ अखड शीलपालका साध्वी ऋतुमती न भविष्यति ।
- ५ सरतर श्राद्धः सिंधुदेशं गतः मन् धनवान् भावी ।
- ६ सरतर सध शाकिन्यादयो न छलिष्यति ।
- ७ जिनदत्तनाम्नि गृहीते सिद्धुत्पातादिरूपद्रवो न भावी ।

इति । पुनर्योगिनीभिरुक्तं—एतद्रचनसप्तकं पालनीय, येन प्रागुक्तमस्मद्दत्तवरसप्तकं सफलं स्यात् । तद्यथा—

- १ सिंधुदेशं गतेर्गच्छनायकः पंचनदी साधनं कार्यम् ।
- २ तथा सूरिभिः प्रतिदिनं द्विशतं (२००) वारं सूरिभद्रजापः कार्यः ।
- ४ सरतर श्राद्धैरुभयकालं गृहे वा उपाश्रये वा सप्त स्मरणानि गुणनीयानि ।
- ५ साधुभिर्नित्यं द्विमहत्तं नमस्कारं गुणनीयाः । तत्रैकस्मिन्मणिके एको नमस्कारं एकं च उपमर्गहरस्तोत्रं एव यद्गुणनं तत् रिचचडिका इत्युच्यते ।
- ६ तथा सरतर श्राद्धैर्माममध्ये आचाम्लद्वयं कार्यम् ।
- ७ सरतर माधुभिः सति सामर्थ्ये सदा एकाशनकं कार्यम् ।

इति । पुनस्ताभिरुक्तं—१ दिल्ली, २ अजमेरु, ३ भरुअच्छ, ४ उज्जैन, ५ मुलतान, ६ उच्चनगर, ७ लाहोर—एतन्नगरसप्तके परिपूर्णशक्तिर्हितः सरतर गच्छनायकं रात्रौ न स्यात्तच्छमित्युक्त्वा स्वस्थानं जग्मुः । तथा पुनरजमेरुनगरे पालिकं प्रतिक्रमणं कूर्तुं श्री गुरुभिः पुनः पुनर्ननत्कारं कूर्तुं निगृह्य भद्रप्रलेन जलपात्रस्याधोभागे रथिता, ततः प्रतिश्रमणानंतरं पात्राधोभागात् निष्कास्य ' जिनदत्तनाम्नि गृहीते मतिं नाहं पतिष्यामीति ' तद्वद्गृहीत्वा मुक्ता स्वस्थानं गता । तथा पुनरेकदा गुरोरो विहारं कूर्तुं वृद्धनगरं प्राप्ताः, तत्र निनमतोन्नतिममहमानां ब्राह्मणां जिनचैत्ये त्रियमाणा गां प्राक्षिपतिस्म । ततो मृता गाः । ता च विलोक्य, ब्राह्मणाः प्रोचुः—अहो जनानां देवो गांधातक इति । ततो विलभीर्भूतः श्रावकैर्गुरोः निगृह्य, तत्र गुरुभिर्भद्रप्रलेन व्यनययोगेण मृता गां मज्जीकृताः, ततः सा गाः स्वयमेव जिनगृहादुत्थाय शिपदेरगृहे शिनमुच्चैरि आगत्य निपतिता । ततो नगरे ब्राह्मणानामती

वोपहासो जातः । तदा लज्जिता ब्राह्मणा गुरुणां चरणयोर्निपतिताः, इत्थं कथयामासुश्च—भो स्वामिनो यूयं महन्तः । इतः परमस्मिन् नगरे ये केपि भवत्परंपरायां सूरयः समेष्यन्ति तेषां प्रवेशोत्सवं वयं करिष्यामहे इति । तदानीं भूयसी जिनमतप्रभावना जाता । तथा पुनरन्यदा उच्चनगरे गुरवः समागतास्तत्र प्रवेशोत्सवे जायमाने जनानामतिवाहुल्यात् तद्ग्रामार्थीशस्य मुगलस्य पुत्रो वाहनान्निपत्य मृतः, तदा श्राद्धाः सर्वेपि विमनस्का जाताः, अथ तेषां मुखात् श्री गुरुभिरेतत् स्वरूपं विज्ञाय जिनमतप्रभावनार्थं मद्यमांसमक्षणमस्मै न कारयितव्यमित्युक्त्वा व्यंतरप्रयोगेण पणमासान् यावत् स मृतो मुगलपुत्रः सजीवः कृतः । तथा पुनर्नागदेवनामा श्राद्धः अंबड इत्यपर नामा एकदा गिरनार पर्वते उपवास त्रयं कृत्वा अंबिकां समाराध्य च 'हे ! मातरस्मिन् समये भरतक्षेत्रे युगप्रधानपदधारकः कः सूरिरस्ति, यमहमात्मनो गुरुत्वेन स्थापयामीति' पृष्टवान् । तदा अंबिकादेव्या तस्य हस्ते सुवर्णाक्षरैः—दासानुदासा इव सर्वदेवाः, यदीय पादाब्जतले लुठंति । मरुस्थले कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ १ ॥ इत्येतत्काव्यं लिखित्वा प्रोक्तं 'य एतानि तव हस्ताक्षराणि प्रकटयिष्यति स सूरिर्युगप्रधानो ज्ञेयः । ततः स श्राद्धः स्थाने २ बहुभ्यः सूरिभ्यो हस्तमदर्शयत् परं कोपि अक्षराणि वाचयितुं न समर्थो बभूव । अथैकदा स पाटणनगरे त्रांवावाडाभिधपाटके श्री जिनदत्तसूरीणां पार्श्वे समागत्य हस्तं दर्शितवान्, गुरुभिस्तद्हस्तलिखितस्वर्णाक्षराणामुपरि वासचूर्णप्रक्षेपं कृत्वा शिष्याय आज्ञा दत्ता । ततो वाचितानि शिष्येण तान्यक्षराणि । तदा स नागदेवः परमभक्तिमान् श्रावको बभूव । एवं विधाः कलिकाले युगप्रधान—पदधारकाः श्री गुरवो जाताः । तथा पुनरेकदा व्याख्यानं कुर्वद्भिः श्री गुरुभिर्दीर्घोपयोगेन समुद्रमध्ये निमज्जंतं श्रावकस्य पोतं विज्ञाय स्वस्मरणं कुर्वतां जनानामुपकारार्थं व्याख्यानपृष्ठकं मध्ये मुक्त्वा पक्षिरूपेण समुद्रे गत्वा पोतस्तारितः । एवं श्राद्धस्य कष्टं दूरी कृत्य पश्चादागत्य व्याख्यानं कर्तुं समुपविष्टा ज्ञातश्चैष वृत्तांतः सर्वैरपि लोकैः, ततः श्री गुरुणां महामहिमा प्रससार । तथा पुनरन्यदा श्री गुरवः प्रबलप्रवेशोत्सवेन मुलताननगरे समागताः, तदा चतुःपथे स्थितेन पत्तनवास्तव्य परपक्षीय—अंबडनाम्ना श्रावकेण खरतर गच्छोन्नतिमसहमानेन प्रोक्तं—

'अस्मिन्नगरे इत्थमाडंबरेण भवद्भिरागम्यते परं अणहिल्लपत्तने यद्येवं भवदागमनं स्यात्तदा ज्ञायते' इति । अथैतत् श्रुत्वा गुरुभिस्तं 'भो ! वयमनेनैव प्रकारेण तत्रायास्यामः, परं त्वं तैललवणादिकं स्क्रंधे वहन् सन्मुखं मिलिष्यसीति' । अथ गुरवः कियद्भिर्वासैरणहिल्लपत्तने समाजग्नुः । तदानीं स अंबडश्राद्धो दैववसान्निर्धनो जातः । ततो ग्राहकभयात् मुलताननगरात् पलाय्य पत्तने समागत्य तैललवणादि व्यापारेणाजीविकां कुर्वन् प्रवेशोत्सवे जायमाने गुरुणां सन्मुखं मिलितः, गुरुभिरुपलक्ष्य शब्दितस्ततो गुरुपरि अति द्वेषं वहन् कपटेन खरतर श्राद्धो बभूव । एकदा श्री गुरुभ्यो विपमिश्रितं शर्कराजलं पायितवान् । ततो गुरुभिर्विपप्रयोगं ज्ञात्वा तत्रत्य रायभणशालिक गोत्रीय आभूनामकं सुख्यश्राद्धं प्रति तत्स्वरूपं निवेद्य घटिका-योजनगामिना क्रमेलकेन पाल्हणपुरात् विषापहारिणीमुद्रासानाय्य निर्विषैर्जाताः । अथ स

क्षयदो लोकः निद्यमानस्ततो मृत्वा ध्वंतरो भूत्वा चलनार्थं गुस्त्रिद्राणि पश्यात्तिस्म । एकदा पट्टात् रजोहरणप्रपत्तेनेन छलिता गुग्गुस्तेन । ततः श्री गुग्गुन् व्यग्यान् विलोक्य जाम्बूनामकं आवकेण तद्व्यंतरत्रयमा स्वकुंडेन गुग्गुणामुपरि डोकयित्वा सञ्जीकृत्वा गुरुरस्ततो गुल्मिस्तदच-
 ष्टं घ्रात्वा रजोहरणं गृहीत्वा तत्रययोगेण जीवितं सर्वमपि तन्नं बुद्धयम् । ततो नष्टो ध्वंतरः स्वस्थानं यया । तथा पुनरंक्रदा विक्रमपुरे मरकोपद्रवः प्रादुर्भूतः, ततो गुस्त्रिभिर्जनैभ्यः स उपद्रवो धारितः, तदा दुःखितैर्माहिर्धरंक्तं- 'स्वानिन् ! अस्मदुपर्वपि एषा कृपा विधेया ' ततो गुस्त्रिभिर्वचनं गृहीत्वा वेपामपि मरकोपद्रवो निरस्तस्तदा षड्व्यो माहेधराः श्रावकाः कृताः, तथा कोपि धरा श्राद्धा न जाताः । नन्मध्ये यस्य चत्वारः पुत्रास्तस्य एकः पुत्रो गृहीतो, यस्य चतस्रः पुत्र्यन्तर्भ्यंका पुत्री गृहीता, एष च पचशत (५००) शिष्याः, सप्तशत (७००) माष्यश्च दीक्षिताः । इत्य श्रीजिनदत्तगुरिर्भिर्द्रुपु नगरेषु नाहटा, रासेचा, मणशाली, नवलया, टागा, वृणीया इत्यादि गोत्रारंभृताः माधिरंक्र (१) लक्ष श्राद्धाः प्रलियोधिताः । तथा श्रीगुस्त्रिभिर्मुल्लाननगरे लृणीया गोत्रीय द्वाधी साहस्योपरि कृपा विधाय प्रतिक्रमणे तस्मै " अजियंजियमच्यमयं " इति स्तोत्रं दत्तम् । तथा अणहिल्लपत्तेने रोहित्यरा गोत्रीय आवके-
 भ्यो " जयतिद्रुपण पर पण्य रुन्व " इति स्तोत्रं दत्तम् । तथा गुस्त्रिभिर्मैटताग्ये नगरे गणधर चोपडा गोत्रीय श्राद्धेभ्य " जयमगहं पाम " इति स्तवर्नं प्रदत्तम् । अर्धविधाः क्षत्रीय-
 प्राजगादि-तुनीन-साधिरंक्रश्राद्धप्रतिषोषकाः, जलभ्रमोपरि कंधलास्तरणादि प्रकारेण पंचनदीनाधराः, सदेहदोलायत्याधनेरुग्रन्थविधायराः परकायप्रवेशिन्यादि-विनिधविधा-
 संपन्नाः, परोपकारकारिणः, परमयशःर्मायाधारिणः, श्री गुरुरतर गच्छन्नायकाः महा-
 प्रभावराः श्रीजिनदत्तमुग्गय. म० १०११ जापाट शुदि एकादस्यामजेरु नगरे अनशनं कृत्वा प्रथम स्वर्गं गता ॥ ४४ ॥

॥ श्री जिनदत्तगुरीणा गुग्गुणा गुणवर्णनम् । मया समादिदन्त्याणमुनिना लेखा दत्तम् ॥
 गविम्भरेण तन्वर्तुं गृगचार्योपि न भ्यः ।

४५ तन्वर्तुं पंचरत्नाग्निचक्रम् श्री चिनरट्टुरिः । म प म० ११९७ मात्रपद्र
 दृक्क अष्टमा लक्ष्यजना, पिना माह रामलकं साता देन्दपदेवी तयो पुत्रः । म० १००३
 पान्गुण कृत्वा नरगां अचमेपुरे मप्रामदीनम् । म० १२११ धर्माय मुदि पञ्चा विप्रम-
 पुरे गगनहार्नस्मितीनेन श्रीजिनदत्तगुरिभिः स्वयन्तात्सर्वदे स्थापितः । तस्मिन्नि
 र्दितमानाः, मत्त-धेद्रपादवोरितय मुताः । अथान्यदा श्री गुरुरो गुग्गुरिदेव प्रदि
 गलय श्रीराज मन्त्राल श्रीचरादि मपाद्रेण शिरीनगरे ममागताः, तत्रैषदा गुस्त्रिभि-
 र्नामन्वारां नदनरान्भद्राण उन्- ' अस्माकं नन्वो मपिगिन्, मा चाप्रिमस्त्राममये
 दृपद्वयवाराधनेन भरणं गृहीत्वा, तथा मार्गमध्ये विश्रामद्वयार्थं मेदिना न
 रिमोप्या, शि। म। मरांयु पद रिपने र्पाणि प्रत्तर म० १२२३ मात्र कृत्वा पतुदंस्या-
 म्नामने स्वर्गं गताः । तदा सर्वे शररा मर्दान्द प्रदिनस्त्रापायं पत्तिका शरणा प

माणिक्यचतुष्के समागताः, तावता तैः कार्याकुलत्वेन प्रागुक्तगुरुवचनविस्मरणात् विश्रां-
 त्कार्यं सेडिकाऽथो विमुक्ता, मणिग्रहणाय दुग्धपात्रमपि न रक्षितं, परं तत्रैको विद्यावान्
 योगी मणिजिघृक्षया दुग्धपात्रं भृत्वा एकांते स्थितः । अथ सा सेडिका बहुप्रयत्नेन उत्पाद्य
 मानापि नोत्तिष्ठतिस्म । ततः सर्वस्मिन्नपि नगरे एषा वार्ता प्रवृत्ता, क्रमेण पतिसाहिनापि श्रुता ।
 ततः स्वयं तत्र आगत्य बहव उत्पादनोपाया अपि कृताः, परं सेडिका पदमात्रमपि ततो
 न चलित्वा, ततः पतिसाहिना प्रोक्तं—‘सत्यो यं देवः, एतस्य स्थानमत्रैव भवतु’ ततः श्रावकै-
 स्तत्रैवाग्निसंस्कारः कृतः । तस्मिन्नवसरे मणिगुरुमस्तकात् फडाकशब्दं कृत्वा योगिरक्षितदुग्ध-
 पात्रे आगत्य निपतिता, योगी च तां गृहीत्वा स्वस्थानं ययौ । तदा मदनपालेनोक्तं गुरुभि-
 र्मेघं प्रागुक्तमासीत्, परमहं त्वरावसात् विस्मृतः । ततः सर्वैः साधुश्रावकैः तस्मै उपालंभो
 दत्तः । अथ तत्रैव जिनचंद्रमूरीणां स्तूपस्थापना कृता, पतिसाहिप्रमुखैः सर्वैरपि लोकैर्बहुमानो
 विहितः, तत् स्थानमद्यापि पूज्यमानं प्रवर्त्तते । एवं विधाः सप्रभावाः श्री गुरवो जाताः । इतश्च-
 त्थपट्टे सातिशयजिनचंद्रेति नाम स्थाप्यमिति पञ्चावती वचनात् व्यवस्था जाता ॥ ४५ ॥

४६. तत्पट्टे पद्चत्वारिंशत्तमः श्री जिनपतिसूरिः । तस्य च सं० १२१० चैत्र वदि
 अष्टम्यां मूलनक्षत्रे जन्म । तथा माल्हूगोत्रीय राह यशोवर्द्धनः पिता, सृहवदेवी माता । सं०
 १२१८ फाल्गुण वदि अष्टम्यां दिल्लीनगरे दीक्षा । सं० १२२३ कार्तिक सुदि त्रयोदश्यां
 श्रीजयदेवाचार्येण पदस्थापना कृता । अथ श्रीजिनपतिसूरय एकदा बब्बेरनाम्नि पत्तने
 संमाजगमुः; तत्र पद्त्रिंशद्वादेषु जयो लब्धः । बह्वी जिनशासन-प्रभावना कृता । तथा
 पुनरेकदा आसापुरे श्रीमालज्ञातीय हाजीसाह कारित प्रतिष्ठावसरे मणिशाहिणा योगिना
 जिनप्रतिमा स्तंभिता । तदा सचिन्तैर्गुरुभिः स्वगुरवः समाराधिताः । ततः श्रीजिनचंद्र
 सूरिभिः प्रादुर्भूय चूर्णं दत्तम् । अथ प्रभाते गुरुभिः प्रतिमोपरि तच्चूर्णं प्रक्षिप्तं तेन सद्य उत्थि-
 ता प्रतिमा, ततो रंजितेन योगिना मणिः पश्चात् प्रदत्ता, श्री गुरूणां भूयान्माहिमा प्रससार ।
 तथा पुनरेकदा श्री गुरवोऽजमेरु नगरे चतुर्मास्यां स्थिता आसीत्, तदा तत्रत्य रामदेवादि
 श्रावकाणां पुरः सदैव खड्ग वास्तव्य छाजेडगोत्रीय मंत्रि ऊधरण साहस्य प्रशंसाम-
 कुर्वन् । एकदा रामदेव श्राद्धो मंत्रि ऊधरणं प्रति मिलितः, तदा तेन मंत्रिणा रामदेवं बह्वादरेण
 स्वगृहं समानीय विधिना भोजनादिभिस्तद्भक्तिः कृता, तस्मिन्नवसरे मंत्रिपत्नी देवगृहे
 देववंदनार्थं चलित्वा शाटक-कंचुकाद्यनेक वस्त्रभृता छव्वाडिका सार्थं गृहीतवती । तदा राम-
 देवेन पृष्टं-किमर्थमेताः, ततः सेवकैः उक्तं-साधयिक स्त्रीभ्यः प्रदानार्थं सदैव गृह्यते । तदा
 रामदेव उवाच श्री जिनपतिसूरयो यद् भवत्प्रशंसां कुर्वन्ति तद् योग्यमेव, यद् गृहे इत्थं
 धर्मकार्याणि जायंते इति ।

अथैकदा ऊधरणमंत्रिणा नागपुरे देवगृहं कारितं तदा विंशतिप्रतिष्ठानिमित्तं मंत्रिणा स्वकीयाः
 कुलगुरवः समाहूताः, परं केनापि कारणेन मुहूर्तोपरि नागताः । अपरं च ऊधरणस्य भार्या खरतर
 गच्छीय श्राद्धस्य पुत्री आसीत्, तथा मंत्रिकुलगुरून् हीनाचारिणो मत्वा शुद्धसंवेगंगधारिणः

श्रीजिनपतिमूरयः समाहृताः, ते च मुहूर्त्तौपरि तत्रागताः । तदा तेषां पार्श्वे प्रतिष्ठा कारिता ।
 ऊधरणमंत्रि सङ्घर्षः सरस्वर गच्छीय श्रावकश्च वभूव; तस्य च कुलधरनामा पुत्रो जातो
 येन घाहडमेरनगरे उल्लुंगतोरणप्रासादः कारितः । तथा पुनर्मरोटवास्तव्य नेमिचंद्र भाडा-
 गारिकेण परीक्षा कृत्वा शुद्धमवेगवत श्रीगुरून् ज्ञात्वा चारित्रेच्छां कुर्वाणो अंगडनामा स्व-
 पुत्रो गुरुभ्यो दत्तः । एवविधा श्रीजिनपतिमूरय सर्वायुः सप्तपट्टि वर्षाणि प्रपाल्य, सं०
 १२७७ पाल्हणपुरे स्वर्गं गताः ।

तदा सं० १२१३ आचलिक मत जातं । तथा सं० १२८५ चित्रवाल गच्छीय जगचंद्र-
 मूरितः तपामणो जातः ॥

४७. श्री जिनपतिमूरिपट्टे सप्तचत्वारिंशत्तमः श्री जिनेश्वरमूरिः । तस्य च सं० १२४५
 मार्गशीर्ष सुदि एकदश्यां भरणीनक्षत्रे जन्म । तथा मरोटवास्तव्यभाडागारिक नेमिचंद्रः
 पिता, लक्ष्मी माता, तयोः पुत्रो अवड इति मूलनामा । सं० १२५५ रोडनगरे दीक्षा दत्त्वा
 गुरुभिर्वीरप्रभ इति नाम दत्तं । ततः सं० १२७८ माघसुदि पष्ठ्यां जालोर नगरे म्राद्धः
 गौत्रीय साह क्षीमसीकारित द्वादश सहस्र रूप्यमुद्राव्ययरूप नदिमहोत्सयेन सर्वदेवा-
 चार्यप्रदत्त सुरिमंत्रेण पदस्थापना जाता । अर्थरुद्रा अणहिलपत्तने कुमारपालेन राज्ञा
 हेमाचार्याय प्रोक्त—‘स्वामिन् ! यदि महा स्वर्णसिद्धेरुपाय दद्यास्तर्हि निरुमादित्यवद् अह-
 मपि नर्षान् सवत्सर प्रवर्त्तयामि’ । तदा गुरुणोक्त—‘श्रीहरिमद्रमूरिशिष्यानीतर्थाद्वपुस्तके
 स्वर्णसिद्धेरुपायोस्ति, पर तत् पुस्तकं सरस्वर गच्छे निघते’ । ततो राजा नानादेश-
 निवासिनो व्यापारार्थं पत्तने स्थितान् श्रावकान् निरुध्य कथयामास ‘यदि पुस्तकं आना-
 ययत तदा मुच्यन्ते’ । ततः श्रावकजिनेश्वरमूरिम्यस्तस्वरूप कथापितं, तदा
 गुरुभिश्चित्रकटे गत्वा चिंतामणिपार्श्वनाथ-चैत्यस्तमात् पुस्तकं निष्कास्य पत्तने आनीय
 राज्ञे दत्त, परंतु “इदं पुस्तकं न छोटनीय न वाचनीय, किंतु भाटागारे पूजनीयमिति” पुस्तकौ-
 परि लिखितानि वर्षाणि निलोम्य राजा उवाच—‘अहं तु नैतत् पुस्तकं छोटयामि’ । हेमा
 चार्येणाप्युक्त—‘महापुरुषाणा वचनं न लोपनीय । तदा हेमाचार्यमगिनी हेमश्रीनीम महत्तरा
 उवाच—‘अहं छोटयामि जिनदत्तमूरिपचनात् नाहं निभेमि’ । ततो राजा तस्य पुस्तकं दत्त, तथा
 छोटित पर तत्कालमेव तस्या द्वे अपि चक्षुषी निःसृत्य पतिते, ततो अथत्व प्राप्ता ता दृष्ट्वा
 राजा पुस्तकं स्वमहागारे मुक्तं राज्ञे अग्रेलंप्रात् तद्भाडागार सर्वमपि ज्वलित, तदा तत्
 पुस्तकं आकाशे उड्डीय स्वस्थानं प्राप्तम् । एवविधाः श्री जिनेश्वरमूरयः सं० १२३१
 आश्विन वादि पष्ठ्यां अनशनेन स्वर्गं गताः ॥ ४७ ॥

तद्वारके १२३१ जिनसिंहमूरितो लघु सरस्वर गारा मित्रा । अयं तृतीयो गच्छभेदः ॥

४८. श्री जिनेश्वरमूरि पट्टेऽष्टचत्वारिंशत्तमः श्रीजिनप्रबोधमूरिः । स च दुर्गप्रबोध-
 प्यारव्याता । साह श्रीचद-भार्या मिरियादेनी तयोः पुत्र । सं० १२८५ लज्जजन्मा पर्वत
 इति मूलनामा । सं० १२९६ कालगुण वादि पचम्या हस्तार्के विगपट्टनगरे गृहीतदीक्षः,

प्रबोधसूरिरेति दत्तनामा क्रमेण वाचकपदं प्राप्तः, ततः सं० १३३१ आश्विन वदि पंचम्यां संक्षेपेण कृतपट्टाभिषेकः । पश्चात् सं० १३३१ फाल्गुणवदि अष्टम्यां स्वातिनक्षत्रे जालोरवास्तव्य माल्हूगोत्रीय साह खीमसीकेन पंचविंशति सहस्र (२५०००) रूप्यक व्ययेन सविस्तरं विहितपदमहोत्सवः । एवंविधः श्री जिनप्रबोधसूरिनिर्मलचारित्रमाराध्य सं० १३४१ स्वर्ग गतः ॥ ४८ ॥

४९. तत्पट्टे एकोनपंचाशत्तमः श्रीजिनचंद्रसूरिः । तस्य च समियाणाभिधग्रामवास्तव्य छाजहडगोत्रीय मंत्रिदेवराजः पिता, कमलादेवी माता, खंभराय इति मूल नाम । सं० १३२६ मार्गशीर्ष सुदि चतुर्थ्यां जन्म । सं० १३३२ जालोरनगरे दीक्षा । सं० १३४१ वैशाखसुदि तृतीयायां सोमवारे जालोरवास्तव्य माल्हूगोत्रीय साहखीमसीकेन द्वादशसहस्र (१२०००) रूप्यकव्ययेन पदमहोत्सवः कृतः । एवंविधाश्चतुर्नृपप्रतिबोधकाः, कलिकाल-केवलीति विरुद्विख्याताः, जितानेकवादिनः, जिनशासनोन्नतिकारिणः, श्रीजिनचंद्रसूरयः सं० १३७६ कुसुमाणाख्ये ग्रामे स्वर्ग गताः ॥ ४९ ॥

तद्वारके खरतर गच्छस्य राजगच्छ इति प्रसिद्धिर्जाता ।

५०. तत्पट्टे पंचाशत्तमः श्रीजिनकुशलसूरिः । तस्य च समियाणाभिधग्रामवास्तव्य छाजहड गोत्रीय मंत्रि जील्हागरः पिता, जयंतश्रीः माता, सं० १३३० जन्म । सं० १३४७ दीक्षा । सं० १३७७ जेष्ठ वदि एकादश्यां राजेंद्राचार्येण सूरिमंत्रो दत्तः । तदा पाटणवास्तव्य साह तेजपालेन नंदिमहोत्सवः कृतः । चतुर्विंशतिशत (२४००) साधु-साध्वीभ्यः, तथा सप्तशत (७००) वेषधारि दर्शनं प्रमुखेभ्यो वस्त्राणि दत्तानि; तथा तस्मिन्नवसरे दिल्लीवास्तव्य महतीयाणगोत्रीय विजयसिंह श्राद्धः तत्रागतस्तेनापि बहुधनव्ययेन नंदिमहोत्सवः कृतः । तथा सं० १३८० साह तेजपाल कृत संघेन सार्धं शत्रुंजयतीर्थ समागतैः गुरुभिर्मर्नतुंग नाम्नि खरतर वसतिप्रासादे सप्तविंशत्यंगुलप्रमाण श्रीआदिनाथविंश-प्रतिष्ठा कृता । तथा भीमपल्लीनगरे भुवनपालकारित द्वासप्तति (७२) देवकुलिकामंडित श्रीवीरचैत्यं प्रतिष्ठितम् । तथा जेसलमेरुनगरे जसधवलकारितचिंतामणिपार्श्वनाथप्रतिष्ठा कृता । तथा पुनः जालोरनगरे श्रीपार्श्वनाथप्रतिष्ठा विहिता । तथा आगराभिधनगरनिवासी-श्रीसंघस्य आग्रहेण तत्सार्धं भूत्वा शत्रुंजय यात्रां कृत्वा भाद्रपदवदि सप्तम्यां पाटणनगरे आजग्मे । तथा श्रीगुरूणां द्वादशशत (१२००) साधु संप्रदायो जातः, पंचाधिकैकशत (१०५) साध्वी संप्रदायोऽभूत् । तथा श्रीगुरुभिर्विनयप्रभादि-शिष्येभ्य उपाध्यायपदं दत्तं, येन विनयप्रभोपाध्यायेन निर्धनीभूतस्य निज भ्रातुः संपत्तिसिद्धचर्थ मंत्र गर्भितगौतमरासो विहितस्तद्गुणनेन स्वभ्राता पुनर्धनवान् जातः । एवंविधा बहु श्रावकप्रतिबोधकाः, परम जिनधर्मप्रभावकाः, श्रीजिनकुशलसूरयः, सं० १३८९ फाल्गुणवदि अमावस्यां देराउर नगरे अष्टौ दिनानि यावत् अनशनं कृत्वा स्वर्गं प्राप्ताः । ते च अधुनापि “दादौजी” इति नाम्ना सर्वत्र जगति प्रसिद्धाः संति, प्रति नगरं गुरूणां चरणन्यासौ पूज्येते, सोमवत्यां पौर्णिमास्यां प्रथमं दर्शनं दत्तं, तेन तद्दिने विशेषेण पूजा प्रवर्तते इति ॥ ५० ॥

५१. तत्पट्टे एकपंचाशत्तमः श्रीजिनपद्मसूरिः । तस्य च छाजहडनगामिभूषणस्य स० १३८९ जेट सुदि पट्ट्या श्री देगडपुरे माह हगपालेन नदिमहोत्सवः कृतः । तदा अष्टमे वर्षे तरुणप्रभाचार्येण सूरिमत्रो दत्तः । अथेन्द्रा श्रीगुरुर्गाहडभेस्नगरे श्री वीर-प्रासादे देवपदनार्थं आजग्मे, तदा देवगृहस्य लघु द्वारं महती च प्रतिमा मिलोक्य, पजाव-देशोत्पन्नत्वात्तदेशभाषया प्रोक्त—'वृहा नदा नमही वड्डी अडर क्यु माणीति' अथे-ह्य् धर्चनः प्रकटितनालमात्र, श्रीगुरु प्रति पार्श्वस्थितेन विनेकसमुद्रोपाध्यायेन मौन कुरु, इति प्रोक्त, ततो व्याख्यानादि स्थितिं प्रार्चयता तेनोपाध्यायेन मार्द्ध श्री गुरो गुरुरदेशे आगताः, तत्र पाटणपार्श्वे सरस्वतीनदीतटे रात्रौ स्थिता, पर तदानीं गुरुचेतमि इयं चिंता ममुत्पन्ना—'प्रभाते सघाग्रेजनया भाषया कथं व्याख्यान करिष्ये' अर्थव चिंतयता गुरुणा भाग्येन अर्ध-रात्रसमये सरस्वतीनद्या अधिष्ठायिका सरस्वती देवी प्रादुर्भूय इत्यं चर दत्तपती—'भो स्वामिन् ! प्रभाते त्व सघाग्रे यत् किमपि नक्ष्यासि तद्वचः सकलजनमनोहारि भविष्यति' । ततः प्रभाते ममस्तसंघाग्रे श्री गुरुभिः स्वयमेव "अहंतो भगवत इद्रमहिता" इत्यादि नमनोत्पादितकाव्येन उपदेशो दत्तः, तदा समस्तोपि मघो श्री गुरुनाग्निलासश्रवणेन रंजितमना सजातः । तत्र गुरुभिः "नालधनलकूर्चाल सरस्वती" निरुद्ध प्राप्तम् । एतविधाः श्री जिनपद्मसूरयः स० १४०० वैशाख सुदि चतुर्दश्या पाटण नगरे स्वर्गं गताः ॥ ५१ ॥

५२. तत्पट्टे द्विपचाशत्तमः श्रीजिनलन्धिसूरिः । तस्य च पाटणनास्तव्य ननलखा-गोत्रीय साह ईश्वरकृतनदिमहोत्सवेन पदस्थापना जाता । तरुणप्रभाचार्येण सूरिमत्रो दत्तः । ततः क्रमेण श्री गुरुः सर्वमेद्वैतिकशिरोमणिरष्टविधानपुरकथं सजातः । स च स० १४०६ नागपुरे स्वर्गं मारु ॥ ५२ ॥

५३. तत्पट्टे त्रिपचाशत्तमः श्री जिनचन्द्रसूरिः । तस्य च स० १४०६ माघ सुदि दशम्या नागपुरनास्तव्य श्रीमाल साह हार्थकृत नदिमहोत्सवेन पदस्थापना जाता । तरुणप्रभाचा-र्येण सूरिमत्रो दत्तः । श्री गुरुः स० १४१५ आपाठवदि त्रयोदश्या स्तभतीर्थे स्वर्गभाक् ॥ ५३ ॥

५४. तत्पट्टे चतुःपचाशत्तमः जिनोदयसूरिः । तस्य च पाल्हणपुरनास्तव्य माल्हा-गोत्रीय साह रुंडपाल पिता, धारलदेनी माता, स० १३७५ जन्म, समरौ इति मूलनाम । स० १४१५ आपाठसुदि द्वितीयाया स्तभतीर्थे लूणीयागोत्रीय साह जेमलकृत नदिमहो-त्सवेन श्रीतरुणप्रभाचार्येण पदस्थापना कृता । ततः श्रुिगुरुभिः तत्र श्रीस्तभतीर्थे अजितजिनचैत्यप्रतिष्ठित, तथा श्रीशत्रुजययात्रा कृत्वा तत्र पञ्च प्रतिष्ठाः कृताः । एव विधाः पचपर्वदिनोपनासकारकाः, द्वादश ग्रामेषु अमारिवोपणा प्रवर्तकाः, अष्टाविंशति (२८) साधुपरिवारेणाने रुदेशनिहारकारिणः, श्रीजिनोदयसूरयः स० १४३२ भाद्रपद वदि एकादश्या पाटणनगरे स्वर्गं गताः । तद्वारके स० १४२२ वेगड सरस्वर शाखा मिन्ना, तदेव-प्रथमं धर्मप्रल्लमनाचक्राय आचार्यपदनदानविचारः कृत आसीत्, पश्चात् त सदोप ज्ञात्वा द्वितीयदिप्याय आचार्यपदं दत्तं । तदा रदेन धर्मप्रल्लमगाणिना जेतलमेरुनास्तव्य वेगड

छाजहडगोत्रीय स्वसंसारिणामग्रे सर्वोपि स्ववृत्तांतः प्रोक्तः । ततः तेषां मध्ये कैश्चित् तद्
 आतादिभिरुक्तं 'अस्माकं त्वमेवाचार्यः, वयमन्यं न मन्यामहे' इति । तदा तत्रायं चतुर्यो
 गच्छभेदो जातः । परं तत्संसारिण एव द्वादश श्रावका जाताः, नान्ये; तथा गुरुशापात्
 तद्गच्छे प्राय एकोनविंशति (१९) यतिभ्योऽधिका यतयो न भवंति, यदि स्यात् तदा त्रियंत-
 अष्टो वा स्यात् इति ॥ ५४ ॥

५५. श्रीजिनोदयसूरिपट्टे पंच पंचाशत्तमः श्रीजिनराजसूरिः । तस्य च सं०
 १४३२ फाल्गुनवदि षष्ठ्यां पाटणनगरे साह धरणकृतनंदिमहोत्सवेन सूरिपदं जातं । ततो
 मुखार्थीतसपादलक्षप्रमाण न्यायग्रन्थाः, श्री स्वर्णप्रभाचार्य, भुवनरत्नाचार्य, सागरचंद्राचार्य
 स्थापकाः, श्री गुरवः सं० १४६१ देवलवाडाख्ये नगरे स्वर्गं गताः ॥ ५५ ॥

५६. तत्पट्टे षट्पंचाशत्तमः श्री जिनभद्रसूरिः । तत् प्रबंधो यथा—सागरचंद्राचार्येण
 श्री जिनराजसूरिपट्टे श्री जिनवर्द्धनसूरिः स्थापित आसीत् । स चैकदा जेसलमेरुदुर्गे
 श्री चिंतामणिपार्थदेवगृहे मूलनायकपार्थस्थितां क्षेत्रपालमूर्तिं विलोक्य, स्वामिसेवकयो-
 स्तुल्यस्थाने अवस्थानमयुक्तमिति विचिंत्य च क्षेत्रपालमूर्तिं उत्पाद्य द्वारे स्थापितवान्, ततः
 कुपितः क्षेत्रपालो यत्र तत्र गुरुणां चतुर्थव्रतभंगं दर्शयामास । अनया रीत्या एकदा चित्रकूटे
 समागताः, तत्रापि देवेन तथैव कृतं, ततः सर्वेपि श्रावकाः चतुर्थव्रतभंगं ज्ञात्वाऽयं पूज्य-
 पदयोग्यो नास्ति, इति कथयामासुः, अथ जिनवर्द्धनसूरयो व्यंतरप्रयोगेण ग्रथिलीभूताः
 संतः पिप्पलकग्रामे गत्वा स्थिताः, कियंतः शिष्याः पार्श्वे स्थितवंतः । अथ पश्चात् सागर-
 चंद्राचार्यप्रमुखसमस्तसाधुवर्गेण एकत्रीभूय 'गच्छस्थितिरक्षणार्थं नवीन आचार्यः
 स्थाप्य' इति विचारं कृत्वा एकं नवीनं क्षेत्रपालमाराध्य तं च सर्वेषु देशेषु संप्रेष्य-
 'यद्ययं करिष्यन्ने तदस्माकं प्रमाणमिति' समस्त खरतरगच्छ-संघस्य हस्ताक्षराणि
 आनाय्य सर्वसाधुमंडलीं संमील्य भाणसोलग्रामे आजग्मे । तत्र श्रीजिनराजसूरिभि-
 रेकः स्वशिष्यो वाचकशीलचंद्रगणपार्थेऽध्यापनाय रक्षितोऽभूत् । स च अधीतसकल-
 सिद्धान्तार्थः, भणसालिक गोत्रीयः, भादौ इति मूल नामा । सं० १४६१ गृहीतदीक्षः ।
 क्रमेण पंचविंशति वर्षाद्यो जातः । तं च योग्यं ज्ञात्वा श्री सागरचंद्राचार्यः सप्त भकाराक्षराणि
 संमील्य सं० १४७५ माघ सुदी पौर्णमास्यां भणसालिक नालहा साहकारित सपादलक्ष-
 रूपकव्ययरूपनंदिमहोत्सवेन सूरिः स्थापितवान् । सप्त भकारास्तु अमी-१ भाणसोल
 नगरं, २ भणशालिक गोत्रं, ३ भादौ नाम, ४ भरणी नक्षत्रं, ५ भद्रा करणं, ६ भद्रारकपदं,
 ७ जिनभद्रसूरीति स्थापित नाम, इति । अथैवंविधा अर्जुदाचल, गिरिनार, जेसलमेरु प्रमुख-
 स्थानेषु त्रिवंशसादप्रतिष्ठाकारकाः, श्री भावप्रभाचार्य, कीर्तिरत्नाचार्य,—स्थापकाः । स्थाने
 २ पुस्तक भांडागारस्थापकाः, श्री जिनभद्रसूरयः, सं० १५१४ मार्गशीर्ष वदि नवम्यां
 कुंभल मेरुनगरे स्वर्गं प्राप्ताः । तद्वारके सं० १४७४ श्री जिनवर्द्धनसूरितः पिप्पलक खरतर
 शाखा भिन्ना । अयं पंचमो गच्छभेदः ॥ ५६ ॥

५७. तत्पट्टे सप्तपचाशत्तमः श्री जिनचन्द्रसूरिः । तस्य च जेसलमेरुवास्तव्य चम्पगोत्रीय साह बच्छराजः पिता, बाल्हादेवी माता । स० १४८७ जन्म, सं० १४९२ दीक्षा, स० १५१४ वै० व० २ कुंभलमेरु वास्तव्य बृकडचोपडागोत्रीय साह समरासिंह-कृतनदिमहोत्सवेन श्री कीर्तिरत्नाचार्येण पदस्थापना कृता । ततो अर्धुटाचलोपरि नमफणपार्थ नाथप्रतिष्ठाविधायकाः, श्रीधर्मरत्न, गुणरत्नसूरि,—प्रमुखानेकपदस्थापकाः श्री जिनचन्द्रसूरयः सं० १५३० जेमलमेरुनगरे स्वर्ग प्राप्ताः ॥५७॥

—तद्वारके सं० १५०८ अहमदाबादे लौंकारूपेण लेखकेन प्रतिमा उत्थापिता, ततः स० १५२४ वर्षे लौंकाभिध मत जात ॥

५८. तत्पट्टे अष्टपचाशत्तमः श्री जिनसमुद्रसूरिः । तस्य च जहडमेरुवासी पारसु गोत्रीय देकासाह पिता, माता देवलदेवी । स० १५०६ जन्म, स० १५२१ दीक्षा, स० १५३० मा० सु० १३ जेमलमेरुवास्तव्य सचपति सोनपालकृतनदिमहोत्सवेन श्री जिनचन्द्रसूरिभिः स्वहस्तेन पदस्थापना कृता । ततः पचनडी मोमयसादिगाथकाः, परमचारिव्रततः, श्री जिनसमुद्रसूरयः स० १५५५ अहमदाबाद नगरे स्वर्ग गताः ॥ ५८ ॥

५९ तत्पट्टे एकौनपष्टितमः श्री जिनहससूरिः । तस्य च सेत्रावाभिध नगरवास्तव्य चोपडागोत्रीय साह मेघराजः पिता, कमलोदेवी माता । स० १५२४ जन्म, स० १५३५ दीक्षा, स० १५५५ अहमदाबादे पदस्थापना जाता । तथा स० १५५६ वैशाखसुदि तृतीयाया रोहिणी-नक्षत्रे श्रीवीकानेनगरे करममीमत्रिणा पीरोजी-लक्ष्म्येन पुनः पदस्थापना-महोत्सवो विहितः । अर्थकदा आगरामिधनगरवास्तव्य स० डगरसी, मेघराज, पोमठच ग्रमुल सधेन अत्याग्रहेण आहृताः श्री जिनहससूरयः तत्र गताः । तदा पतिसाहिप्रहितहस्त्यच-मित्रिकावादित्रिष्टत्रचामराद्याडघरेण गुरुणा प्रवेशोत्सवो निहितः । तत्र गुरुभाक्तिसध-भाक्ति-आर्दा डिलखद्रव्य व्ययीकृतं, तदसहमान-पिशुनकृतनिकारण पतिमाहिना गुरव आहृताः, धवलपुरे रक्षिताः । ततो देवकृतसानिध्यात् श्री गुरवः पतिनाहिचित्त रजयित्वा, पचशत (५००) बदिजनान् मोचयित्वा, अमारयोपणा कारयित्वा, उपाश्रये आगताः । हर्षितः समस्तोपि मघः । ततोऽतिर्माभाग्यधारकाः, त्रिपु नगरे प्रतिष्ठात्रयकारकाः, अनेकमघपति-प्रमुखपदस्थापकाः, श्री गुरवः पाटणनगरे त्रीणि दिनानि अनयन कृत्वा स० १५८० स्वर्ग प्राप्ताः ॥ ५९ ॥

—तद्वारके स० १५६४ मरुदेशे उपाध्याय (प्रायन्तरे आचार्य) शान्तिसागरत. आचार्य खरतर शाखा भिन्ना अत्र पट्टो गच्छमेदः ॥

६०. तत्पट्टे षष्टितम श्रीजिनमाणिक्यसूरिः । तस्य च बृकडचोपडागोत्रीय साह जीवराजः पिता, पद्मादेवी माता । स० १५४९ जन्म, सं० १५६० दीक्षा, स० १५८२ वर्षे भाद्रपदवादि नमस्या साह देवगजकृत नदिमहोत्सवेन श्रीजिनहंससूरिभिः स्वहस्तेन पद-स्थापना कृता । ततो गुर्जर देश, पूर्व देश, त्रिपु देशादि विहारकारकाः, पंचनदीसाधकाः,

सं० १५९३ मिते वीकानेरवास्तव्य वच्छासुत मंत्रि कर्मसिंहकारित नमिनाथ चैत्यविंव-
प्रतिष्ठाकारकाः श्री जिनमाणिक्यसूरयः किर्यति वर्षाणि जेसलमेरुदुर्गेऽवसन् । तदा मुनयः
सर्वेपि शिथिलाचारा जाताः, प्रतिमोत्थापकमतं च बहु विस्तृतं । ततो वीकानेरवास्तव्य
वच्छावत मंत्रि संग्रामसिंहेन गच्छस्थितिरक्षणार्थं श्री गुरव आहृताः, तदा भावतो विहित-
क्रियोद्धारैः श्रीगुरुभिः 'प्रथमं देराउरनगरे श्रीजिनकुशलसूरियात्रां कृत्वा पश्चात् परिग्रहं
त्यक्त्वा इतो विहारं करिष्ये' इति विचिंत्य गुरुयात्रार्थं देराउरे जग्मे । तत्र गुरुदर्शनं कृत्वा,
जेसलमेरुं प्रति पश्चादागच्छतां गुरुणां मार्गं जलाभावात्पिपासापरीपहः समुत्पन्नः । ततो रात्रौ
जलं मिलितं तदा गुरुभिश्चितितं 'मया इयंति वर्षाणि रात्रौ चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानं कृतं,
तदद्य एकास्मिन् दिने कथं विनाश्यते' इति । ततः तत्रैव सं० १६१२ आपाढसुदि पंचम्या-
मनशनेन कालं कृत्वा स्वर्गतिं प्राप्ताः ॥ ६० ॥

६१. तत्पट्टे एकपाष्टितमः श्रीजिनचंद्रसूरिः । तस्य च तिमरीनगरपार्श्वस्थवडलीग्राम
वास्तव्य रीहडगोत्रीय साह श्रीवंतः पिता, सिरीयादेवी माता । सं० १५९५ जन्म, सं०
१६०४ दीक्षा, सं० १६१२ भाद्रपदसुदि नवम्यां जेसलमेरुनगरे राउत मालदेवकारित-
नंदिमहोत्सवेन सूरिपदं जातं । तदा एव रात्रौ श्रीजिनमाणिक्यसूरिभिः प्रादुर्भूय
समवसरणपुस्तकस्थमाम्नायसहितं सूरिमंत्रपत्रं जिनचंद्रसूरिभ्यो दर्शितं । ततः श्रीजिन-
चंद्रसूरयः संवेगवासनया वासितचित्ताः संतः, गच्छे शिथिलत्वं दृष्ट्वा सर्वं परिग्रहं परित्यज्य मंत्रि-
संग्रामसिंहपुत्रकर्मचंद्राग्रहेण वीकानेर नगरे समागताः, तत्र प्राचीनोपाश्रयं शिथिलाचारै-
र्यतिभिर्निरुद्धं विलोक्य मंत्रिणा स्वकीयाऽश्वशाला गुरुभ्यो दत्ता, अपरापि बह्वी गुरुभक्तिः
कृता । गुरवस्तत्र विशेषतः क्रियोद्धारं विधाय सुविहितसाधुमार्गमादृत्य, स्वसमानाचारैः
साधुभिः सार्द्धं ततो विहारं कृत्वा स्थाने स्थाने प्रतिमोत्थापकमतोच्छेदं कुर्वतः स्वसमाचारीं
द्रढयंतः क्रमेण गुर्जरदेशे आगताः । तत्राऽहमदावादनगरे चिर्मटीव्यापारेणाजीविकां
कुर्वाणौ मिथ्यात्विकुलोत्पन्नौ प्राग्वाटज्ञातीयौ सिवा-सोमजी-नामानौ द्वौ भ्रातरौ प्रतिबोध्य
सकुटुंबौ महाधनवर्तौ श्रावकौ कृतवंतः । तथा पाटण नगरे एकदा केनापि परपक्षीयेण जनानां
पुरो 'अभयदेवसूरिः खरतरगच्छे न जातः,' इत्युक्तं—तदा गुरुभिः शास्त्रसंमतं वादं कृत्वा
चतुःशीतिगच्छीय मुनिसमक्षं परपक्षीयाः पराजयं नीताः । ततः सर्वैरपि नवांगीवृत्ति-
विधायकोऽभयदेवसूरिखरतरगच्छे जातः इत्यंगीकृतं । पुनः तत्कृतकुमतिकुदालग्रन्थोऽ
शुद्धमार्गं प्रापिनः । तथा पुनः फलवर्द्धिकपार्श्वनाथदेवगृहद्वारे तपागच्छीर्यैर्दत्तानि तालकानि
उद्धाटितानि, तथा पुनरेकदा मंत्रि कर्मचंद्रमुखाद् गुरुणामति महत्त्वं श्रुत्वा पतिशाहिना
दर्शनार्थं समाहृता गुरवो लाहोरनगरे गत्वा अकञ्चरं प्रतिबोध्य सकलदेशेषु फुरमाणकान्
मांचयित्वाऽष्टाह्निकासु अमारिपालनं कारितवंतः, तथा वर्षं यावत् स्तंभनगरपार्श्वस्थसमुद्र-
मत्स्यान् मोचितवंतः, तथा पुनर्येषामतिशयं दृष्ट्वा पतिसाहिना युगप्रधानपदं दत्तं । तस्मि-
श्रवसरे एव श्रीमदकञ्चराग्रहात् गुरुभिर्जिनसिंहसूरिः स्वहस्तेनाचार्यपदे स्थापितः । तदाऽति

प्रमुदितेन कर्मचंद्रमत्रिणा महोत्सवो विहितः । तत्र नव ग्रामाः ९, नव हस्तिनः ९, पंचाशत् (५००) घोटकाः याचकेभ्यो दत्ता एवकारसपादकोटि द्रव्यं दत्त । पुनर्मत्रिणाञ्जेकदा श्री खरतरगच्छोद्दीपनं विहितं । तथा पुनः सं० १६५२ श्री गुरुभिः पचनद्यः साधिताः, तत्र पारपचक, मानमद्र यक्ष, खजक्षेत्रपालादयो देवाः साधिताः । तथा पुनरेकदा सं० १६६९ श्री सलेमपतिसाहिना गानादिकलानिपुणत्वेन स्वपार्श्वे रक्षितस्य तपागच्छीययतेर्निज-स्त्रिया सह एकातस्नेहवार्त्ताकरणाद्यनाचारं विलोक्य कुपितेन सता स्वसेवकेभ्य इत्यमाज्ञा दत्ता—“ मम सर्वदेशेषु ये केपि दर्शनिनः सति ते सर्वेपि स्त्रीधारकाः कर्तव्याः, नोचेत् देशेभ्यो बहिः कार्या ” इति । ततो भीता यतयः केचित् समुद्रमुल्लघ्य द्वीपातरं गताः, केचित् भूमिगृहेषु प्रविष्टाः, केचित् कोलिककाष्टिकादीना स्थानेषु स्थिताः । तस्मिन्नवमरे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः पाटणतो विहृत्य उपद्रववारणार्थं आगराख्ये नगरे आजग्मे । तत्र गुरुदर्शनादेव रंजितेन पतिसाहिना बहादरेण गुरव आहूताः, तदा गुरुभिर्बहुचमत्कारान् दर्शयित्वा प्राग्दत्ताज्ञा दूरीकारिता, सर्वत्र फुरमाणकान्मोचयित्वा सर्वे यतयः स्व स्व स्थान प्रापिताश्च । इत्य बहुधा जिनशासनोन्नतिः कृता, पुनर्गुरूणा—१ समयराज, २ महिमाराज, ३ धर्म-निधान, ४ रत्ननिधान, ५ ज्ञानविमल—एतत्पाडवपंचकप्रमुखाः, पंच नवति (९५) शिष्याः सजाताः । एवविधाः श्रीजिनचंद्रसूरयः सर्वाद्युः पचसप्तति (७५) वर्षाणि पालयित्वा, सं० १६७० आश्विन वदिद्वितीयाया वेनातटे स्वर्गं प्राप्ताः ॥ ६१ ॥

—तद्वारके सं० १६२१ भावहर्षोपाध्यायात् भावहर्षीय खरतरशाखामित्रा । अयं सप्तमो गच्छमेदः ॥

६२. तत्पट्टे द्वापष्टितमः श्रीजिनसिंहसूरिः । तस्य च गणधरचोपडागोत्रीय साह चापसी पिता, चतुरगदेनी माता । सं० १६१५ मार्गशीर्षसुदि पाँणमास्या खेतासरप्रामे जन्म, मानसिंहेति मूलनाम । सं० १६२३ मार्गशीर्षवदि पचम्या वीकानेरे दीक्षा । सं० १६४० माघसुदि पचम्या जेमलमेरी वाचकपद । सं० १६४९ फाल्गुनसुदि द्वितीयायां लाहोरनगरे वीकानेर वास्तव्य मत्रि कर्मचंद्रकृत महोत्सवेन आचार्य पदं । सं० १६७० वेनातटे सूरिपद । सं० १६७४ पाँपणदि त्रयोदश्या मेडताख्य नगरे स्वर्गप्राप्तिर्जाता ॥ ६२ ॥

६३. तत्पट्टे श्रीजिनराजसूरिः । तस्य च बोहिट्यरा गोत्रीय साह धर्मसी पिता, धार-लदेनी माता । सं० १६४७ वै० सु० ७ जन्म, सं० १६५६ मि० सु० ३ वीकानेरे दीक्षा, राज-समुद्र इति नाम दत्तं । सं० १६६८ आमाउलिपुरे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः वाचकपद प्रदत्त । ततः सं० १६७४ फा० सु० ७ मेडताख्ये नगरे चोपडा गोत्रीय साह आसकरणकृत महोत्स-वेन सूरिपदं जात श्रीजिनराजसूरिरिति नामविहितं; तथा द्वितीय शिष्य बोहिट्यरा गोत्रीय सिद्धमेनगणिः, तस्मिन् आचार्यपदं दत्त, जिनयागरसूरिरिति नाम विहित । ततो द्वादशवर्षाणि यापदाचार्यः श्रीपूज्याना आगयां प्रवृत्त, पश्चात्तमयसुन्दरोपाध्याय—शिष्य हर्षनदनकृत कदाप्रहेण सं० १६८६ आचार्य जिनसागरसूग्निो लघु-आचार्याय—खरतर शाखा

भिन्ना । अयमष्टमो गच्छभेदो जातः । ततः श्री जिनराजसूरिभिः लोद्रवपत्तने श्री जेसलमेरु वास्तव्य भणशालिक साह थाहरू कारितोद्धार विहारशृंगार श्रीचिंतामणि-पार्श्वप्रतिष्ठा कृता । तथा सं० १६७५ वै० सु० १३ शुक्रे श्रीराजनगर वास्तव्य प्राग्वाटज्ञा० संघपति सोमजीपुत्र रूपजीकारित श्रीशत्रुंजयोपरि चतुर्द्वार विहारहारायमाण श्रीऋषभादि जि-नैकाधिक पंचशत (५०१) प्रतिमानां प्रतिष्ठा विहिता । तथा पुनर्भानुवडग्रामे साह चांप-तीकारितदेवगृहमंडन श्रीभ्रमृतश्राविपार्श्वनाथ प्रमुखाशीति (८०) विंबानां प्रतिष्ठा वि-धायि । तथा पुनर्मंडताख्ये नगरे गणधरचोपडागोत्रीय संघपति श्रीआसकरणसाहकारित चैत्याधिष्ठायक श्रीशांतिनाथप्रतिष्ठा निर्भिता । एवमन्यत्रापि—राजनगराद्यनेकनगरेषु श्रीजिन-प्रतिष्ठा चक्रे । एवंविधाः श्रीजिनमतोन्नतिकारकाः, अंबकाप्रदत्तवरधारकास्तद्वलप्रकटित धंधाणीपुरस्थितचिरंतनप्रतिमाप्रशास्तिवर्णांतराः समस्ततर्कव्याकरणच्छन्दोल्कारकोशकाव्यादि-विविधशास्त्रपारिणो नैपथीयकाव्यसंबंधी जैनराजी—वृत्त्याद्यनेकनवीन ग्रन्थ विधायकाः श्रीवृहत्खरतरगच्छनायकाः श्रीजिनराजसूरयः सं० १६९९ आषाढ सु० ९ पत्तने स्वर्गभाजः । तदैव, सं० १७०० मिते उ० श्रीरंगविजयगणितो रंगविजय खरतर शाखा भिन्ना । अयं नवमो गच्छभेदः । ततस्तन्मध्यात् श्रीसारीपाध्यायतः श्रीसारीय खरतर शाखा भिन्ना । अयं दशमो गच्छभेदः । एकादशस्तु वृहत्खरतर नामा मूलगच्छः । एवमेकादशभेदः खरतर गच्छः ।

६४. तत्पट्टे श्रीजिनरत्नसूरिः । तस्य च सेरूणाभिध ग्रामवास्तव्य ल्क्ष्णीयागोत्रीय साह तिलोकसी पिता, तारा देवी माता, रूपचंद्रेति मूल नाम । तथा निर्मलवैराग्येण मातृ-सहितेन दीक्षा गृहीता । ततः सं० १६९९ आषाढ सुदि सप्तम्यां श्रीजिनराजसूरिभिः सूरि-मंत्रो दत्तः । ततश्च शुद्धक्रियाभ्यासिनोऽनेकपुरविहारकारिणः श्रीजिनरत्नसूरयः सं० १७११ आ० व० ७ अकवरावादे स्वर्ग गताः ।

६५. तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिः । तस्य च गणधरचोपडागोत्रीय साह सहसकरणः पिता, सुपियारदेवी माता, हेमराजेति मूलनाम, हर्षलाभेति दीक्षानाम । सं० १७११ भा० व० १० श्रीराजनगरे नाहटागोत्रीय साह जयमल्ल तेजसी मातृकस्तुरवाईकृत महोत्सवेन पद-स्थापना जाता । ततः श्रीगुरुभिर्योधपुरवास्तव्य साह मनोहरदासकारित श्रीसंघेन सार्धं श्रीशत्रुंजययात्रा कृता, तथा मंडौवरनगरे संघपति मनोहरदासकारित चैत्यशृंगार श्रीऋ-षभादि चतुर्विंशतिजिनप्रतिष्ठा विहिता । एवंविधा नानादेशविहारिणः सर्वसिद्धान्तपारगाः श्रीजिनचंद्रसूरयः सं० १७६३ श्रीसूरतविंदरे स्वर्ग प्राप्ताः ।

६६. तत्पट्टे श्रीजिनसौख्यसूरिः । तस्य च फोगपत्तन वास्तव्य साहलेचा बुहरागोत्रीय साह रूपसी पिता, सुरूया माता, सं० १७३९ मार्गशीर्ष सुदि १५ जन्म, सं० १७५१ माघ वदि ५ पुण्यपालग्रामे दीक्षा, सुखकीर्तिरिति दीक्षानाम । सं० १७६३ आषाढ सु ११ सूरतविंदरवास्तव्य चोपडागोत्रीय पारिष सामीदासेन एकादश सहस्र रूपकव्ययेन पद महोत्सवः कृतः । तत एकदा घोषाविंदरे नवखंडपार्श्वनाथयात्रां कृत्वा श्रीगुरुवः संघेन

सार्धं स्तंमतीर्थगमनार्थं प्रवहणमारूढास्तत्रसमुद्रमध्यभागे पोतस्याधस्तनफलकं भयं, ततो जलेन पूर्णमाण पोत विलोक्य गुरुभिः स्वेष्टदेवाराधन चक्रे । ततः श्रीजिनकुशलमूरिसाहायेन अकस्मान्ग्रीनपोतप्रादुर्भानाज्जलधेः पारलब्ध ततः स पोतोऽष्टद्वयो बभूव । एवविधाः श्रीशत्रुजया दियाराविधायकाः सकलशास्त्रपारगा विजेतानेकवादिनः श्रीगुरवस्त्रीणि दिनान्वयनशन कृत्वा स० १७८० ज्ये० व० १० श्रीरिणीनगरे स्वर्गं प्राप्तास्तत्र तद्दिने देवैरदृष्टवादित्राणि वादितानि तत्पुराधीनादिसर्वलोकास्तद्वाद्यघोष श्रुत्वाऽऽश्चर्यवन्तो जाताः ॥ ६५ ॥

६७. तत्पट्टे श्रीजिनभक्तिमूरिः । तस्य च इदपालमर ग्रामवास्तव्य सेठ-गोत्रीय साह हरिचंद्रः पिता, हरिसुखदेवी माता । सं० १७७० ज्ये० सु० ३ जन्म भीमराजेति मूलनाम । सं० १७७९ माघसुदि ९ दीक्षा भक्तिक्रमेति दीक्षानाम । स० १७८० ज्येष्ठवादि ३ रिणीपुरे श्रीसद्यकृतमहोत्सवेन गुरुभिः स्वहस्तेनाचार्यपद दत्त । ततो नानादेशविहारिणः सादडीप्रभृतिनगरेषु हस्तिचालनादिप्रकारेण प्रतिपक्षान् पराजय नीत्वा विजयलक्ष्मीधारिणः मर्न सिद्धान्तपाठप्रचारिणः श्री सिद्धाचलादि सकलमहातीर्थयात्राकारिणः श्री गूढारण्ये नगरे अजितजिनचैत्यप्रतिष्ठाविधायिनो महोत्सविनः सकलविद्वज्जनशिरोमणि—श्रीराजसोमोपाध्याय, श्रीरामत्रिजयोपाध्यायादि—सत्परिकरसमेवितचरणाः श्रीजिनभक्तिमूरयः कच्छदेशमडन-श्रीमाडवीविंदरे स० १८०४ ज्ये० सु० ४ स्वर्गं प्राप्ताः । तत्र मायं अभिसंस्कारभूमौ देवैर्दीपमाला विहिता । ईडक् प्रभावका जाताः ॥ ६६ ॥

६८. तत्पट्टे श्रीजिनलाममूरयः । तेषा च वीकानेरवास्तव्य बोहित्यरागोत्रीय साह पचायणदासः पिता, पद्मादेवी माता । स० १७८४ आ० सु० चापेउग्रामे जन्म, लालचद्रेति मूलनाम, स० १७९६ ज्येष्ठसुदि ६ जेसलमेरुनगरे दीक्षा, लक्ष्मीलाम इति दीक्षानाम । स० १८०४ ज्ये० सु० ५ श्रीमाडवीविंदरे छाजहडगोत्रीय साह भोजराजकृत नदिमहोत्सवेन पदस्थापना जाता । ततः श्रीगुरवो जेसलमेरुनीकानेराघनेकपुरेषु विहारं कृत्वा स० १८१९ ज्ये० व० ५, पंचसप्तति (७५) साधुभिः सार्धं श्रीगौडीपार्श्वेशयात्रा कृतवन्तः । ततः स० १८२१ फा० सु० प्रतिपत्तिर्था पचाशीति (८५) मृनिभिः सह श्रीज्यंदाचलयात्रा कुरंति स्म । ततश्च घाणेराव—शादडीनामके नगरद्वये चोपडा वपतसाहादिकृतमहोत्सवेन समागत्य उपद्रवकरणाय स० पक्षीयान् स्वजलेन पराजय नीत्वा विजयवादित्राणि वादितवतः । ततस्तद्देशराणपुरादि—पचतीर्थी वदित्वा वेनातट-भेदिनीतट—रूपनगर—जयपुरगेडयपुरादि—नगरेषु विहृत्य सं० १८२५ वै० सु० १५ अष्टाशीति (८८) मुनिभिः सार्धं श्रीचूलेवगडाधिप्रायकरूपभदेवयात्रा कुरंति स्म । ततः पल्लिक्रासत्य-पुर—राधनपुरादिषु विहृत्य श्रीमसेश्वर पार्श्वयात्रा कृत्वा सेठ गुलालचंद्र सेठ भार्द्दास श्रीग-पाग्रहालपुरतविंदरे समागताः । तत्र स० १८२७ वै० सु० १२ आदिगोत्रीय साहनेमीदामांगज भार्द्दास कारित त्रिभूमप्रासादमडन श्रीशीतलनाथ महस्रफणपार्श्व गौटीपार्श्वेशेकाशीत्याधिक शत (१८१) विंश प्रतिष्ठा कृतवतः । तथा स० १८२८ वै० सु० १२ तत्रैव देवगृहे श्री महावीरसिद्धि द्वयशीति (८२) विंशप्रतिष्ठा कुरंति स्म । तदा देवगृहविंश निर्माण

प्रतिष्ठाद्वयविधानसंघभक्तिकरणादौ षट्त्रिंशत्सहस्र (३६०००) रूपकानि व्ययी भूतानि । ततश्च मुनिसुव्रतस्वामियात्रार्थं भृगुकच्छे समागताः । तत्र रात्रौ रेवातटे योगिनीकृत महाघनवृष्ट्युपद्रवेण व्याकुलीभूतं सर्वसार्थं स्वष्टेदेवस्मरणेन निराकुलं कृतवंतः । ततो राजनगरभावनगरादौ विहृत्य घोघावंदरे नवखंडपार्श्वयात्रां विधाय पादलिप्तपुरे समागताः । तत्र सं० १८३० माघवदि ५, पंचसप्ततिमुनिभिः सार्द्धं श्रीशत्रुंजययात्रां कुर्वति स्म । ततो जीर्णगढमागत्य सं० १८३० फा० सु० ९ पंचाधिकैकशत (१०५) साधुभिः सह श्री गिरनारमंडननेमिजिनयात्रामकुर्वन् । ततो वेलाकूलपत्तन-नव्यनगरादिषु विहृत्य कच्छदेशे मांडवीविंदरे श्रीगुरुपदकमलस्थापनां वंदित्वा क्रमेण तद्देशाद्विहृत्य राउपुरनगरे श्री चिन्तामणिपार्श्वेशमभिवंध सं० १८३३ मिति चैत्र वदि द्वितीयायां श्री गौडीपार्श्वयात्रां चकुः । एवंविधाः परमसौभाग्यादिसद्गुणश्रेणिधारिणो महोपकारिणः श्रीजिनलामसूरयः सं० १८३४ मिति आश्विन वदि १० श्री गूढानगरे स्वर्गं गताः ॥ ६७ ॥

६९. तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरयः । तेषां च वीकानेरवास्तव्य वच्छावतमुंहता रूपचंद्र पिता, केसरदेवी माता, सं० १८०९ कल्याणसरग्रामे जन्म, अनूपचंद्रेति मूलनाम । सं० १८२२ मंडोवरे पुरे दीक्षा, दयासार इति दीक्षानाम । सं० १८३४ आश्विन वदित्रयोदश्यां सोमे शुभलमे गूढानगरे कूकडचोपडागोत्रीय दोसी लक्खासाहकृतोत्सवेन सूरिपदं जातं । ततस्तेगणाधीश्वरा महेवादिपुरेषु चैत्यान्यभिवंध श्रीगौडीपार्श्वेशं नत्वा क्रमेण जेसलमेरुवीकानेरादिषु चिन्तामणि पार्श्वनाथादि देवयात्रां कृतवंतः । तत्र जेसलमेरौ आवश्यक्यादि-योगक्रियां च विहितवंतः । ततोऽयोध्या कासी चंद्रावती पाटलीपुत्र चंपा मकसूदावाद संमैतसिखर पावापुरी राजगृह मिथिला दुतारापार्श्वनाथ क्षत्रिकुंडग्राम काकंदी हस्तिनागपुरादियात्रां व्यधुः । तदानीं पूर्वं देशे श्रीलक्ष्म्याउनगरे नाहटागोत्रीयः सुश्रावको राजा वच्छराजाख्यश्चतुर्मासकत्रयं महोत्सवेन कारितवान् । तत्र बहुविस्तृतः प्रतिमोत्थापक-निन्हवमार्गः श्रीपूज्यैः स्वज्ञानवलेन निराकृतः, बहवः श्राद्धाः सन्मार्गं नीताः । श्रीपूज्यानां सुतरां महिमा प्रससार । तन्नगरासन्नोद्याने राज्ञा श्रीजिनकुशलसूरीणां स्तूपः कारितस्ततोविहृत्य श्रीगिरनारशत्रुंजयतीर्थयोयात्रां व्यधुः । तत्र पादलिप्तपुरे परपक्षीयैः सार्द्धं महान् विवादः समजनि; परं श्रीदेवगुरुप्रसादाज्जयप्राप्तिर्जाता, परपक्षीयाः पराजयं प्राप्य पलायितास्तदा तत्रत्य नृपादिभिर्बहुमानकरणात्पूज्यानां महिमा सर्वत्र सुतरां विस्तृतवान् । ततो वर्षानंतरं मोरवाडाभिधग्रामे श्रीगौडी पार्श्वेश यात्रार्थमागते साधिक लक्ष मनुष्यात्मक श्रीसंघे तत्रत्यामात्थादि प्रधानपुरुषवचनाद् द्वयोर्भट्टारकयोः परस्परमेलः संजातः । ततो दक्षिणदेशेऽन्तरिक्षपार्श्वेशयात्रां कृत्वा श्रीसूरत विंदरे सं० १८५६ ज्ये० सु० ३ स्वर्गं गताः । एवंविधाः परमसौभाग्यधारिणः सकलजन्मनोहारिणः सर्वसिद्धान्ताध्ययनकारिणः सर्वत्रविख्यातकीर्तिभरा जंगमयुगप्रवराः श्रीबृहत्खरतर गच्छेश्वराः वाग्जितभुरेंद्रसूरयः श्रीजिनचंद्रसूरयः संजाताः ॥ ६८ ॥

गांभीर्यादिगुणग्रामवेश्मना शुद्धचेतसा । श्रीजिनलामसूरीणामाज्ञामादाय शोभना ॥ १ ॥
 श्रीजिनमक्तिमूरीन्द्रशिष्या बुद्धिबार्द्धयः । प्रीतिसागरनामानस्तच्छिष्या वाचक्रोत्तमाः ॥ २ ॥
 श्रीमतोऽमृतधर्माख्यास्तेषां शिष्येण धीमता । समाकल्याणमुनिना शुद्धिसंपत्तिसिद्धये ॥ ३ ॥
 संवत्सरे व्योमकृशानुसिद्धि क्षोणी (१८३०) मिते फाल्गुन मासि रम्ये ।
 विशुद्धपक्षे लिखिता नवम्या गुरुस्तुतिर्जीर्णगढे नयासी ॥ इति श्रेयः ॥

[अनुपूर्तिः]

७०. तत्पट्टे श्रीजिनहर्षमुरयः । तेषां बालेनाग्रामे जन्म, हीरचंद्रेति मूलनाम, मीठडियाजुहि-
 रागोत्रीय साह तिलोकचंद्रः पिता, तारादेवी माता । सं० १८४१ आऊग्रामे दीक्षा, हितरग
 इति दीक्षानाम, सं० १८५६ ज्ये० सु० १५ श्रीसुरतर्भंदरे श्रीसघकृतोत्सवेन सूरिपदं जात ।
 श्रीजिनहर्षसूरिरितिनाम निहित । तदा तस्मिन्नगरे श्रीसघेन चैत्यनिर्माणा प्रतिष्ठा करापिता ।
 तथा सं० १८६० अक्षयतृतीयाया तिथौ देवीकोटवास्तव्य श्रीसघकारित देवगृहे सार्द्धं
 शतनिबाना प्रतिष्ठा व्यधायि । तथा पुनर्जालोरनगरे मन्त्रि अपयराजकारित देवगृहे प्रतिष्ठा
 निर्मिता । तथा सं० १८६६ चै० सुदि १५ गिडीयासघपति राजाराम लूणीया गोत्रीय साह
 तिलोकचंद्र कृत संघे सपाद लक्ष आर्द्धः एकादश शतसाधुभिः सह श्रीगिरनार-पुडरीकादी
 यात्रामकुर्वन् । ततो गुरव अनेक देशेषु विहृत्य सं० १८७० शिखरगिरिराज तीर्थस्य यात्रा
 चक्रुः । पुनरपि सं० १८७६ श्रीसघेन सह शिखरगिरियात्रा चक्रुः । ततः पश्चाद् दक्षिणदेशे
 अंतरीक पार्श्वनाथ, मगसी पार्श्वनाथ, धुलेवगढ इत्यादि तीर्थयात्रा कुर्वता सं० १८८७ आपाढ
 सुदि १० तिथौ श्रीरीकानेरे श्रीसीमघरस्वामिभंदरे पचविंशति निंनाना प्रतिष्ठा निर्मिता ।
 सं० १८८९ मा० सु० १० तिथौ श्रीवीकानेरे सेठियागोत्र साह अमीचद कारित सम्मत्तशिखर
 गिरिभावधिराजितमंदिरस्य प्रतिष्ठा विहिता । तस्मिन्नगरे जैसलमेरवास्तव्य वाफणा साह-
 बाहदरमल्ल जोरानरमल्लकस्य हृदये सिद्धाचलगिरियात्राविचारो बभूव । मनसीति विचारः स
 म्युत्पन्नः—यः सिद्धाचलगिरिं स्पृशति तस्य जीवितसफल भवति' इति निचार्य सर्व परिवारेण सह
 विक्रमपुरे आगताः, महामहोत्सवेन बहुद्रव्यव्ययेन गुरवः वदिताः, सप्तस्थानेषु बहु द्रव्य दत्त,
 तदा सर्व साधून् प्रति बहु वस्त्राण्यर्पितानि । तदा गुरवः श्रीसघेन सह सिद्धाचलगिरियात्रां
 प्रतिचेलुः । अतराले वर्षाकालस्समागतः । तदा गुरव महोत्सवे चतुर्मास्या स्थिताः । एव विधाः
 जितानेकत्रादिनः जिनशामनोद्योतकरा गुरवस्तत्र मद्योत्सवे सं० १८९२ का० व० ९ चतुः
 प्रहराणि यापदनशन प्रपाल्य स्वर्गगताः ॥

७१. तत्पट्टे एक सप्ततितमाः श्रीजिनसौभाग्यमुरयः । तेषां च मारवाडवास्तव्य स्वार्द्धे सेर-
 डाग्रामे सं० १८६२ जन्म, सुरतरामेति मूलनाम, गणधर चोपडा कोठारी गोत्रीय साह करमचदः
 पिता, कल्या देवीमाता, सं० १८७७ सिंधिया दोलतरावकस्य लस्करे दीक्षा श्रीभाग्यविशा-
 लेति दीक्षानाम, सं० १८९२ मार्गशीर्ष शुक्ल मत्तम्या गुरुवारे शुभलघ्ने श्रीमद्विक्रमनगरे राजा-
 नची साह लालचद सालमर्हिह कृतनदी महात्सवेन सूरिपदं जात ॥

परिशिष्टम्.

[प्रत्यन्तरे ६२ तम पट्टपश्चात्-यावत् ७१ पतम पट्टपर्यन्तं निम्नलिखिता
भिन्न पट्टपरंपरा समुपलभ्यते.]

६३. तत्पट्टे त्रिपाष्टितमः जिनसागरसूरिः । तस्य च वोहित्यरागोत्रीयः श्रीवीकानेर-
वास्तव्य साह वच्छराजः पिता, मिरगादे माता । सं० १६५२ वर्षे कार्तिकसुदि १४ रवौ
अश्विन्यां जन्म, चोला मूलनाम । सं० १६६१ वर्षे माहसुदि ७ दिने अमरसरसि श्री जिनसिंह-
सूरिणा दीक्षितः । श्रीमालचुहरा अचूका श्रावकैर्नदीमहोत्सवः कृतः । वादी श्री हर्ष-
नंदनगणिना बाल्यत आरभ्य सर्वशास्त्राणि पाठितानि । सं० १६७४ वर्षे फाल्गुनसुदि
सप्तम्यां मेडताख्ये नगरे चोपडागोत्रीय साह आसकरणकृतमहोत्सवेन सूरिपदं जातं, श्री
जिनसागरसूरिरिति नाम विहितं । तथा द्वितीय शिष्य वोहित्यरागोत्रीय राजसमुद्र-
गणिः, तस्मै आचार्यपदं दत्तं, जिनराजसूरिरिति नाम विहितं । ततो द्वादशवर्षाणि यावदा-
चार्यः श्री पूज्यानां आज्ञायां प्रवृत्तः, पश्चात् आचार्य जिनराजसूरितः त्रिभिर्गच्छो विभिन्नः ।
तस्य व्यवस्था इयं-सं० १६९९ मिते बृहत् भट्टारक श्रीरंगविजयगणितो रंगविजय खरतर
शाखा भिन्ना, अयं नवमो गच्छभेदः । ततः तन्मध्यात् श्रीसारोपाध्यायतः श्रीसारीय खरतर
शाखा भिन्ना, अयं दशमो गच्छभेदः । ततः सं० १७१२ आचार्य जिनराजसूरीणां द्वितीय
शिष्य रूपचंद्रेण लघु भट्टारक खरतर शाखा भिन्ना, अयं एकादशमो गच्छभेदो जातः ।
ततः भट्टारक श्री जिनसागरसूरिभिः सं० १६७४ वैशाख सुदि त्रयोदश्यां शुके श्रीराज-
नगरवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय संवपति सोमजीपुत्र रूपजीकारित श्री शत्रुंजयोपरि
चतुर्द्वार विहारहारायमाण श्रीऋषभादिजिनैकाधिक पंचशत (५०१) प्रतिमानां प्रतिष्ठा
विहिता । एवंविधाः श्रीजिनमतोन्नतिकारकाः, अंविकाप्रदत्तवरधारकाः, समस्ततर्कव्याकरण-
च्छंदोलंकारकोषकाव्यादि विविधशास्त्रपारिणः, स्थाने स्थाने सर्वत्र श्रावकैर्मानिताः, परम-
संवेगवंतः, भाग्यसौभाग्यवंतः, भट्टारक श्रीजिनसागरसूरयः श्री अहमदाबादनगरे
सं० १७२० वर्षे ज्येष्ठवदि तृतीयायां एकादशवासराऽनशनं विधाय, स्वपट्टे श्री जिन-
धर्मसूरिंद्रान् संस्थाप्य, सर्वशिष्याणां शिक्षां दत्त्वा स्वर्गं जग्मुः । अयमष्टमस्तु बृहत्खरतरनामा
मूलगच्छः । एवमेकादशभेदः खरतर गच्छः ॥ ६३ ॥

६४. तत्पट्टे चतुर्पाष्टितमः श्रीजिनधर्मसूरिः । स च भणशालीगोत्रीय श्रीवीकानेर-
वास्यव्य सा० रिणमलभार्या रतनादेपुत्रः, सं० १६९८ वर्षे पौषसुदि २ अभिजित् नक्षत्रे
जन्म, खरहथ मूलनाम । सं० १७.....वर्षे वैशाखसुदि ३ दिने श्रीजिनसागरसूरिणा दीक्षितः ।
वादि श्री हर्षनंदनगणिना बाल्ये वयसि सर्वशास्त्राणि पाठितानि । सं० १७११ वर्षे माघ-
सुदि १२ आचार्यपदमहोत्सवः चर्द्ध (१) भार्या विमलादे कृतः । सं० १७२० वर्षे श्री विक्र-

मपुरे मट्टारक पदमहोत्सवः गोलपच्छा अचलदासजीकेन कृतः । ततो मट्टारक श्रीजिन-
धर्मसुरिभिः साह उग्रसेन रतनकृत श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ सधयात्रा कृता, पुनः शत्रुजये
पट्टाष्टमादितपः कृत, सर्वदेशेषु सर्वक्षेत्रेषु विहारः कृतः । स० १७४६ वर्षे मृगसिरसुदि ८
श्रीजिनचन्द्रमुरीणा गच्छभार स्वकीयपट्ट समर्थ्य श्री लृणकरणसरसि नगरे स्वर्गं गताः ॥६४॥

६५. तत्पट्टे पचपष्ठितमः श्रीजिनचन्द्रसुरिः । वापडीयग्रामनामी बुहरागोत्रीय साह
सामलदास साहिनवयोः पुत्रः, सं० १७२९ वर्षे जन्म, सुप्रमल्ल नाम । स० १७३८ वर्षे
श्रीजिनधर्मसुरिपार्श्वे दीक्षा गृहीता । स० १७४६ वर्षे मृगसिरसुदि १२ लृणकरणसरसि
मट्टारक पद प्राप्त, तदुत्सवश्च छाजहड रतनमी जोधाणीकेन कृतः । ततः सर्वदेशेषु
निष्ठस्य स० १७८५ वर्षे श्रीजीकानेरमध्ये श्रीजिनविजयमुरीणा आचार्यपदं दत्त । ततः
स० १७९४ वर्षे ज्येष्ठसुदि १५ दिने श्रीजीकानेरनगरे सर्वायुः ६५ वर्षाणि प्रपाल्य
स्वर्गं गताः ॥ ६५ ॥

६६. तत्पट्टे पठ्पष्ठितमाः श्रीजिनविजयमूरयः । कीदृशाः—नाहटागोत्रीय साह डुगरसी
दाडिमदेपुत्र, स० १७४७ वर्षे जन्म, नाम रतनसी । स० १७५३ वर्षे श्रीजिनचन्द्रसुरि-
पार्श्वे दीक्षा । स० १७८५ वर्षे श्रीजीकानेरमध्ये आचार्यपदं प्राप्त, तदुत्सवः श्री हाजी-
खानडेरा वास्तव्य डेहरा धाहरुमल्लकेन कृतः । स० १७९४ वर्षे श्री वीकानेरमध्ये मट्टा-
रकपदं प्राप्त, तदुत्सवश्च डागा पुजाणी कृतः, प्रभायना बार्हि फूला कृता । स० १७९७ वर्षे
आसो वदि ६ दिने जेसलमेरुदुर्गे दिनं गताः ॥ ६६ ॥

६७. तत्पट्टे सप्तपष्ठितमाः श्रीजिनकीर्त्तिनूरयः । तेषां च मारवाडयाम्त्वय्य खीवसरा
गोत्रीय साह उग्रसेन पिता, उच्छरगदेवी माता, स० १७७२ वर्षे वैशाख सुदि सप्तम्या फल
वर्द्धानगरे जन्म, किमनचंटेति मूलनाम । स० १७९७ जेसलमेरु मध्ये मट्टारक पदं प्राप्त ।
अनेक देशेषु विहारं कृत्वा पूर्वदेशे समेतशिरसरादि तीर्थे यात्रां कृत्वा मुकुमुदानाद मध्ये
चतुर्मासकत्रयं कृत, पश्चात् ततो विहारं कृत्वा अनुक्रमेण श्री निरुमपुरे प्राप्तः । पश्चात्
स० १८१९ निरुमपुरे दिनं गताः ॥ ६७ ॥

६८ तत्पट्टे अष्टपष्ठितमाः श्री जिनयुक्तमूरयः । तेषां च मारवाडयास्तव्य बुहरा
गोत्रीयः साह हमराज पिता, लाज्जदेवी माता, स० १८०३ वैशाखसुदि पचम्या जन्म,
मूलनाम जीमणेति । स० १८१५ मट्टारक जिनकीर्त्तिनुरीणा स्वहस्तेन दीक्षिताः । अनेक-
शास्त्रपारगा एतादृशाः, स० १८१९ मट्टारकपदं श्री निरुमपुरे प्राप्त, तदुत्सवश्च गोलपच्छा
कृतः । ततो विहारं कृत्वा श्री जेसलमेरुदुर्गे स० १८२४ आसो वदि द्वादश्या स्वर्गं
गताः ॥ ६८ ॥

६९. तत्पट्टे एकोनसप्ततितमाः श्रीजिनचन्द्रमूरयः । तेषां च ग्राम मगूयास्तव्य
रेहटगोत्रीय साह भागवत पिता, माता च भक्तादेवी । स० १८०३ चैत्रसुदि चतु-
र्दश्या जन्म । स० १८०० युगप्रधान श्री निरुयुक्तमुरीणा स्वयमेव दीक्षां दत्ता,
ततो प्याकरणादि समग्रविद्वान्तपारगाः, परमतराटन प्रवीणाः, एतन्निष्ठा चभूवुः । स० १८२४

श्री जेसलमेरदुर्गे आचार्यपदं प्राप्तं, तदुच्छ्वश्च लक्ष्म्ययेन भूपाल मूलसिंघेन नंदि-
महोत्सवो कृतः । अथान्यदा रतलामपुरे चतुर्मासी कृता, तत्र जिनविंघस्य प्रतिष्ठा मकरोत् ।
ततः श्री शत्रुंजयादि यात्रां कृतवानुक्रमेण विक्रमपुरं अगमत् । अथान्यदा श्री आचार्यस्य
मुखात् धर्मं श्रुत्वा विक्रमपुरस्य राजा परमश्रावको जातः । एवंविधा जिनचंद्रसूरयः जेसल-
मेरदुर्गे सं० १८७५ कार्तिक सुदि पूर्णिमायां स्वर्गं गताः ॥ ६९ ॥

७०. तत्पट्टे सप्ततितमः श्री जिनउदयसूरिः । स च सौवमपालग्रामवास्तव्य
वोत्थरागोत्रीय साह जयरजपिता, जयदेवी माता तयोः पुत्रः । सं० १८३२ माघ सु० सप्तम्यां
जन्म । सं० १८४७ मृगसिरसुदि तृतीयायां भट्टारक श्री जिनचंद्रसूरिणा दीक्षा दत्ता ।
सं० १८७५ मृगसिरसुदि पंचम्यां जेसलमेरदुर्गे आचार्यपदं प्राप्तं, तत्र तत्पट्टमहो-
त्सवः संघवी तिलोकचंद्रेण सहस्र द्रव्यव्ययेन नंदिमहोत्सवः कृतः । अथान्यदा भदसोर
पुरेऽगमत्, तत्र सं० १८९३ वैशाखसुदि तृतीयायां ऋषभजिनस्य विंघं प्रतिष्ठितं । पुनः
विक्रमपुरे सं० १८९७ वैशाखसुदि षष्ठ्यां श्री शान्तिनाथविंघं प्रतिष्ठितं । सं० १८९७ वैशाखसुदि
त्रयोदश्यां दिने विक्रमाख्ये पुरे स्वर्गमगमत् ॥ ७० ॥

७१. तत्पट्टे एकसप्ततितमः श्रीजिनहेमसूरिः ॥ गो....त्रीयः साणियाला ग्राम वास्त-
व्यः साह पृथ्वीराज भा० प्रभादेवी तयोः पुत्रः, सं० १८६६ वर्षे आसाढशुक्ल प्रतिपदायां
पुण्यनक्षत्रे जन्म, हुकमचंद मूलनाम । सं० १८८३ वर्षे वैशाखसिते तृतीयायां श्रीजिन-
उदयसूरिणा दीक्षितः । दीर्घदर्शी कस्तुरचंद्रजीगणिना बाल्यावस्थायां शास्त्राणि पाठितानि ।
सं० १८९७ वर्षे ज्येष्ठशुभ्रदले पंचम्यां तिथौ श्री विक्रमपुरे भट्टारकपदमहोत्सवः ढागा
सुरतरामजीकेन कृतः । ततो भट्टारक श्री जिनहेमसूरिभिः इंदोराख्यपुरे ऋषभेश्वरविंघ-
प्रतिष्ठा कृता, तत्र श्री संघस्य द्विधाभावं निवार्यानंतरं मनोदग्रामे श्री पार्श्वप्रभोविंघप्रतिष्ठा
विहिता । पश्चात् श्री शत्रुंजयादि तीर्थयात्रां कृत्वा सर्वदेशेषु विहृत्य विक्रमपुरे प्राप्तः । तस्मिन्
चिरं पदं भुक्तवान् ।



॥ खरतरगच्छ पट्टावली ॥

[३]

अथ पट्टावली लिख्यते । प्रथमं श्रीउद्योतनसूरिः । सुविहितचक्रवृद्धामणिरुक्त-
 ष्टक्रियाकर्ता जिनशासनसाधुमार्गप्रकाशको बभूव । एकदा मालवदेशात् बहुश्रीसङ्घसहितैः
 श्रीशुश्रूषयतीर्थयात्रार्थं गच्छद्भिर्मध्यरात्रौ आकाशे रोहिणीशुकटमध्ये बृहस्पतिः प्राविष्टो दृष्टः ।
 श्रीसूरिभिरुक्त 'यदि साम्प्रत सूरिपद यस्य दीयते स गच्छाधिपतिर्महान् भावी, गच्छस्य वृद्धिं
 प्राप्नोति, गवेषिता. साधवः पर पार्थे नोपलभ्यते' । तदा गणेशेनोक्त भवच्छिष्यो वृद्धारच्योऽ
 स्ति तस्य दीयता यदि चेलामाहात्म्यमास्ति अयमपि भाग्याधिको भविष्यति । वासो नास्ति ।
 गोष्ठगणकचूर्णेन लुकटीयावडनृक्षाधः स्थापितो वर्धमानसूरिः श्रीउद्योतनसूरिभिः । क्रमेणाय
 श्रीवर्धमानसूरयो बहुपरिवारा जाताः । तस्मिन्नसरे विमलदण्डनायकेन गुर्जरराज्ञा सम्मानि-
 तेनार्षुदाचलधरिभ्या आरासननगरे अम्बायाः कुलदेव्याः प्रासादः कारितस्तत्रागम्य स्वप्ने
 देव्या दर्शन दत्त । रुद्र गृहाणेत्युक्त्वा रुप्यत्रम्यकपानी दर्शते च तथा । ततस्तेन महत् सैन्य
 कृत्या देवीमाहात्म्येन चतुर्विंशति देशा गृहीताः । छत्राणि अग्रे ताद्यन्ते वणिक्कुलत्वात्
 शीर्षे न स्थाप्यन्ते तस्येति । सौराष्ट्रादिमहादेशेषु श्रोत्रार्ता प्रतिपालयन् बहुकाल निनाय । सः
 अन्यदाऽर्जुदाचलेजात् श्रीमार्गानुप्रमातपुत्राग्या सार्धं । शुभस्थानमालोचय श्रीः प्रोचे विमल
 स्वामिन्नत्र स्थले चेत् जिनप्रासादः कार्यः ते तदा महान् लाभो भवति । द्विजाः पृष्टाः
 प्रोचुरितमस्मदीय तीर्थं न कदाचिज्जैनतीर्थमप्राप्सीत् । इत्युक्त्वा विप्रर्महान् कलिः प्रारब्धः,
 मरणाय बहवो ब्राह्मणा उद्यता जाताः । तस्मिन्नसरे श्रीवर्धमानसूरयः समेताः विमलेन
 चन्द्रिताः पृष्टाश्च, मगन् अत्र जैन चैत्य नास्ति अह तत् चैत्य कारयामि । परं विप्रैरेतादृशं
 कर्म प्रारब्ध किं क्रियते । अत्रचेत् जिनप्रतिमा निर्गच्छति तदा एते यान्ति । ततः श्रीसूरिभिः
 तापाटकोटि सुगिमन्त्रजापेन धरणेन्द्र समाहूय तस्याग्रे वार्ता उचता, तेन त्वरितमेव श्रीआदि-
 नाथप्रतिमा धनुःपञ्चाद्यादधःस्थादृशिता । अत्र तीर्थंकरप्रतिमासीत् इत्युक्त्वा ततो विमलेन
 मर्षे द्विजा मेलिताः । यत्रेयं मालापतति ततोऽधो जिनप्रतिमा । क्रमेण निःकृता जिनप्रतिमा ।
 द्विजा. प्रोचुर्मेवदीप तीर्थं पुरामीत् परमधुनास्माभिः गृहीत । महा मान्येन दास्याम इति ।
 दृपालुना विमलेन मधुकरीभिर्धरा पूरिता अतरालधरा निष्ठिति मापि पूरिता, पञ्चकं तत्र जात
 विमलेन दृष्टान् चित्त मर्षोऽप्यय गिरिर्मेया स्वर्णमृदया गृहीयते । द्विजैरचिन्ति तीर्थमस्म-
 दीय सर्वं यास्पतीति विचिन्त्य स्तोत्रेषु धर दत्ता । तत्र महान् श्रीआदिनाथप्रासादः
 कारितः । अर्धशता श्रीगुरय. मरस्वतीपत्तने जग्मुः । शालाया स्थिताः स्वशिष्यान् तर्क
 पाठयन्ति । तदा जिनश्रुद्धिमागता विप्रो श्रुत्वा तर्कशालाया समेता । यादः कृतः गुरुभि-
 र्दयापर्मो प्याग्यात्. । ताभ्यामुपे दयानन्तो विप्रा ष्य । सुगिभिरुक्त न विप्रेषु दया प्राप्यते ।

ताभ्यामुक्तं कथं नेति । गुरुभिः सातिशयैर्वभाषे युवयोः शिरसि मृतमत्स्योऽस्ति । ताभ्यां तथैव दृष्टः । प्रतियुद्धौ द्वाभ्यामपि दीक्षा गृहीता । पठितानि सम्यग् शास्त्राणि । गुरुभिः पट्टे स्थापितः जातः श्रीजिनेश्वरसूरिः ॥ अपरो भ्राता आचार्यो बुद्धिसागरः । अन्यदा गुर्जरधरिण्यां श्रीअनहिल्लपाटके श्रीमूरयः समेताः । तत्र दुर्लभो राजा अतीव-विज्ञः षट्दर्शन पूजकः । तत्र चैत्यवासिनोऽतीवप्रमत्ताः साधुजनद्वेषिणः सन्ति । श्रीजिनेश्वरसूरिः, भ्राता बुद्धि-सागराचार्यः स्वमातुलगृहमागतः । चैत्यवासिनां निर्णीतिर्जाता । प्रभाते राज्ञः सभायां चैत्य-वासिनः समेताः । श्रीगुरवोऽपि राज्ञा पृष्टा युष्माकं मध्ये के सदाचाराः । गुरुभिरुक्तं ये सिद्धान्त-प्रोक्तमार्गानुयायिनस्ते सत्याः । राज्ञा निजकन्या भाण्डागारे मुक्ता, हे कन्ये त्वं पुस्तकं यथा-रुचि गृहीत्वा समानय । सा गता प्रथमत एव दशवैकालिकसूत्रं समानीतं सभा समक्षं, चैत्यवा-सिनः पुस्तकं गृहीत्वा वाचयन्ति स्म । गुरुभिरर्थोऽभिहितः । साध्वाचारे गोचर्याधिकारे पत्र चतुष्कमाच्छादितं । गुरुभिरुक्तं—राज्यपर्पदि स्तैन्यं जायते । पत्राणि निर्वासितानि । एतेऽस-त्यवादिनस्तस्कराः । यूयं खरतराः, इति सत्यवादिनः । गुरुभिरुक्तमेते कोमलाः इति । ततः श्रीगुरुभिः खरतरविरुद्धं प्राप्तं ।

दससय चिहु वीसेहि नयरपाटण अणहिलपुरि । हुओ वाद सुविहित चइवासीसु बहुपरि ।
दुलभनरवइ सभासुमुपि जिणि हेल्इ वजित्तउ । चित्तवास उत्थपिअ देस गूरजरहिव दित्तउ ।
सुविहितगच्छखरतर विरुद दुलभनरवइ तिहां दियउ ।

श्रीवर्धमान पट्टे तिलउ सूरि जिणेसर गहगह्यउ ॥

गच्छस्थापना जाता । बहवः श्रावका बभूवुः ।

२. तेषां पट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरयः । मोजदीन पातिसाहस्य पिंजारकगृहस्थितस्य उक्तम-सूत, यथायं ढिल्यां मालवोपि पातिसाहो भविष्यति । ततः क्रमेण कस्यापि म्लेच्छस्य षवासो जातः । एकदा पातिसाहेनोक्तं म्लेच्छस्य एष सेवको सत्रालोऽस्माकं देहि । तेन दत्तः । शतवर्षीयो मृतावस्थाप्राप्तः पातिसाहः क्षणं यावत् सचेतः क्षणं अचेतो भवति । तदा पाति-साहपुत्रो मोजदीनः पिंजारकपुत्रो पि षवासो नाम्ना मोजदीनः । षवासः तिष्ठन् पार्श्वे परिचर्या करोति, तावत् प्रधानपुरुषैरुक्तं स्वामिन् पुत्रस्य राज्यं देहि । तेनोक्तमवसरे दास्यामि । अन्यदा मध्यरात्रौ श्वासश्चाटितः, ज्ञातं म्रियते, आकारितः पुत्रो मोजदीनः । पुत्रस्य निद्रा समेता । खावासेन ज्ञानं परिचर्यार्थं मामाकारयति । आगतः षवासः पुत्रभ्रान्त्या शिरः टोपी तस्य शिरसि न्यस्त, पङ्गः करे दत्तः । स्वयं प्रणामः कृतः । मिलिताः प्रधानाः प्रोचुः—स्वामिन् किंकृतं ? नामभ्रान्त्या षवासस्य राज्यं दत्तं । पातिसाहेनोक्तं—मया यत् दत्तं तत् दत्तमेवेति । सत्पुरुषवाक्यं नान्यथा स्यात् । पुत्रः प्रणष्टः खवासस्य राज्यं जातं मोजदीनपातिसाहिरिति ।

अथ श्री जिनचन्द्रसूरिभिर्जातं स एव पिंजारकपुत्रोऽस्मत्कथितः पातिसाहिर्जातः । ढिली ण्डले साधूनां विहारो नास्ति । अनेक मुल्ला-सेख-काजी-प्रमुखैर्द्वेषिभिर्निवारितो । वयं यामो येन साधूनां विहारो भवेदिति विमृश्य तत्रागता गुरवः । श्रीमालधनपालगृहस्थिताः ।

तेनोक्तम्—‘श्रीपूज्यानामत्रागमने दुःखाय भविष्यति । सो आगतोऽस्ति । धनपालो जगाम तथैवोवाच च । प्रभाते महोत्सेनेन समानीताः गुरवः । पतितः पादयोः । सर्वत्र देशे साधूना विहारो जातः । बहवः श्रावका जाताः । धनपालकटाकृजाता महुतीयाण गोत्रीया इति ।

मुहुतीयाण ढाहुड जिण नमइ कइ जिण कड जिणचद ।

तस्य पद्मानती प्रत्यक्षासीत् गुरुभिरुक्त-अस्माकं गच्छो यथा वर्धते तथा कुरु । देव्योक्तं गच्छो वर्धिष्यते, चतुर्थपट्टे भनदीय नामदेयमिति । तेन दीयते स तु प्रायो भव्यो भवति ।

तच्छिष्यः श्रीअभयदेवसूरिः । षोडशवर्षे आचार्यपद । प्रथमे दिनेऽतिशृङ्गाररसो व्याख्यातो, लोका हर्षिताः । पर गुरुभिरुक्त-शिष्य, शृङ्गाररसोऽतीव साधुभिर्न वर्ण्यते । यतो विनाशो भवति घर्मस्य । त्व नीरागी, परं लोकाः सरागाः सन्तीति । तदोत्थाय साधुमर्षे पट्टनिकृतित्याग विदधाति स्म । टूरर छासि जलं एतत् द्रव्यत्रय गृहीप्यामीत्यभिग्रह लली ।

क्रमेण गलितकुष्ठी जातः । गलिताः नासिकाघ्राः शरीरावयवाः मुखवक्षिकामपि गृहीतु न शक्नोति । तदा ब्रम्बावतीपुरश्रावकाणा पुरतः प्रोचे गुरुभिः, चेत् सद्यः कथयति तदाह-मनसन गृह्णामि । सद्देनोक्त प्राप्तः । ततो रात्रौ शामनदेवता आगता कथितं नर्भताः सूत्रकोकञ्च्यः संति ता उडर । तेनोक्त अङ्गुलीभिर्विना कथमुद्वरामि । तयोक्तं—सेटिका-

नदीतीरे पापरापलाशतरुतले धेनुदुग्धं स्रजति तत्र श्रीस्तम्भनकपार्थनाथप्रतिमास्ति नागार्जुनेन क्षिप्तास्ति । तत्र गत्वा निजमुद्वया स्तवन कृत्वा तिष्ठ, तत्स्नानोदकेन स्वर्णसमशरीर ते भविष्यति । ततः प्रभाते श्रीसद्देपुरतो चार्त्ता कथिता । सद्दे बहर्ष । श्रीसद्देन सम श्रीगु-

र्यस्तत्र गताः । गोपालेन दर्शित. पलाशः । ननीनस्तोत्रं कृत ‘जयतिहुयणवरकप्यस्त्रस्य’ इत्यादि स्तवनप्रभावेन प्रकटिता श्रीस्तम्भनकपार्थेश प्रतिमा । श्रीसद्देन पूजा कृता । स्नानो-

दकेन गतो रोगः सफलोऽपि । श्रीजिनशारानमहिमा जातः । सकलदेशे बहवः श्रावका जाताः । ततोऽन्यदा शासनदेवी समायाता । तयोक्त त्वयोक्तमभूत् हस्ते सज्जीकृते कोकडी-

रुद्धरिप्यामि, तदधुनाद्वर । नवाङ्गाना वृत्तिं कुरु । ततो नवाङ्गाना वृत्तिः कृता, प्रतिमा पंभायतनगरं स्थापिता । जयतिहुयणद्वारिंशिका सर्ग श्रावकश्राविकाभिः पठिता । तत्र प्रान्तगाथाया धरणेन्द्रपद्मावत्योराकर्षणमन्त्र समानीत नायोऽपित्रापठन्ति (?) । ततः कृप्यत-

स्तोकेनापि धेनुदुग्धाग्रहणानसरो गुणित स्तवन सेहलात् सर्पो बभूव (?) । ततः सूरिभिर्द्वे गाथे भण्डागिते, विना कष्ट न जप्येते इति । श्रीअभयदेवसूरिराचार्यो जातः न मट्टारकस्तेन नामार्त्ता जिनपट न दत्तमिति । अथ श्रीगुरुणा श्रावक एक. प्रतिबोधितः परमर्जनघर्मवा-

मितः, स मृत्वा देवलोकं गतः । देवलोकात् तीर्थंकरवन्दनार्थं महाविदेहे गतो देशना-नन्तरं श्रीसीमन्धराः पृष्टाः—मम गुणवोऽभयदेवसूर्य कतमे मने मुषित गमिष्यन्ति । उक्त प्रष्टुणा तृतीये भवे । पृष्टो बोधोति वेदित श्रीअभयदेवसूरीणा यतः—

भगिन्य तिर्यपरेर्हि महाविदेहे भवमि तड्यमि । तुम्हाण चेव गुरुणो मिग्घ मुत्तिं गमिस्सति ।
कर्पटयाणिज्ये नगरे श्रीअभयदेवा दिव गताः चतुर्भदेवलोके विजयिनः सन्ति ।

अन्यदा चित्रकूटे कचोलाक्षा आचार्याः सन्ति, तेषां शिष्यो वल्लभाभिधः । स तु अत्यन्तसंवेगी परं सर्वशास्त्राणि अधीतानि । यः कौऽपि नवीनः पण्डित आगच्छति तस्य वादेन जित्वा स्वर्णकचोलकं गृह्णाति, तेन भोजनं करोति, तेन नाम्ना कचोलवृक्षाभिधः । अन्यदा पडीगणार्थं आचार्यां ग्रामं गताः । वल्लभस्योक्तं सर्वं पुस्तकं तवायत्तमस्ति परमेषा अपवरिका नोद्घात्या । ततस्तेन सैवैकान्ते दृष्टा । एकादशाङ्गानि वाचितानि । ज्ञातः साधुमार्गः । गुरुणा पृष्टं, सिद्धान्तकारणकथितं, यतिरहं भवामि भवदाज्ञया । ततो दत्तादेशः खरतरगच्छे श्रीअभयदेवसूरिपार्थे दीक्षां गृहीता । अत्यन्तवैराग्यवान् जातः । श्रीअभयदेवसूरिभिः अन्त्यसमये प्रोक्तं—वल्लभस्य पदं देयं । ततो गच्छवासिनः पदं न प्रयच्छन्ति, कौमल्योद्यं न विश्वासोऽस्य । एकदा त्रिस्थानको गुरुः चित्रकूटे गतः । चामुण्डाप्रसादे स्थितः । शिष्यमेकं मुक्त्वा स्वयमाहारार्थं गतः । पश्चात् शिष्येण चामुण्डाअक्षिणी उत्पाटिते क्रीडया, शिष्य अंधो जातः । आगतो गुरुः, शिष्येण प्रवृत्तिरुक्ता । तत्रैव स्थित्वा एकविंशतिकाव्यैश्चामुण्डा प्रतिबोधिता । शिष्यः सजीकृतः । देव्या हिंसा त्यक्ता, गुरोर्महान् लाभो जात इति । तथा वागडदेशे श्रावका बहवो प्रतिबोधिताः—दशसहस्रं प्रमाणाः । संघपट्टनामा ग्रन्थो विहितः लघुर्वृद्धोऽपि । पिण्डविशुद्धिनाम शास्त्रं कृतं । शुद्धमार्गः प्ररूपितः । वर्ष १२ यावत् आचार्यैर्गच्छो निर्वाहितः, तदा मधुकरखरतरगच्छो निर्गतः । सौराष्ट्रदेशे प्रसिद्धः । चिन्तामणिपार्थनाथप्रासादे प्रशस्ति—काव्याष्टकं लिखितमस्ति । तथा 'भावारिवारण' स्तवनं निजनामरहितं कृतं । चित्रवालगच्छनायकेन गृहीतं । चैत्रकूटे चैत्यनिर्णये जाते चरणे पतितः ततो निजनामस्तोत्रे समानीतं । पण्मासायुषि पट्टो दत्तः । संवत् ११६७ वर्षे आसाढवदि ६ दिने पट्टे स्थापना श्रीदेवभद्रसूरिणा कृता श्रीचित्रकूटे । ततो मृत्युअवसरे गच्छेषु गवेपितो वाचनाचार्य जयदेवशिष्यः जिनदत्ताभिधः हुंवादज्ञातीयः पट्टार्थे । श्रीजिनवल्लभः स्वर्गतः ।

ततः श्रीसंवेन समाकारितः श्रीजिनदत्तः सर्वं शास्त्रवेत्ता मार्गे आगच्छन् सारंगपुरे एकः कौमल्यौपाध्यायस्तस्य शिष्याः सन्ति परमतीव मन्दमतयः, पाठकस्य तदा मरणावस्था समेता, कौऽपि नाराधनाकारकस्तादृग् विद्वान्, तदा तं तथाविधं समालोक्य ज्ञातमरणो जिनदत्तः करुणापरो धर्ममनशनलक्षणं तस्मै ददौ । सोऽपि दिनत्रयमनशनं प्रतिपाल्य महर्षिको देवोऽभूत् । तेन जिनदत्तोपकारं स्मरता रात्रौ प्रत्यक्षं समेत्योचे तव सान्निध्यं सर्वदा कारिष्यामि । परं तव पट्टाभिषेको मुहूर्तत्रयं गवेपितमस्ति, प्रथमे पण्मासे मृत्युः; द्वितीये गच्छस्फोटो भविष्यति, तत्र गच्छान्निष्कासनं; तृतीये सुंदरं भावीति । परमियं प्रवृत्तिर्मम न कस्याप्यग्रे वाच्या । ततः समागतो जिनदत्तः प्रथममुहूर्ते कायोत्सर्गे स्थितः । वेला व्यतीता । द्वितीयेऽपि कायोत्सर्गः समारब्धः साधुश्रावकैर्निषिद्धः । ततो द्वितीये मुहूर्ते स्थापितः । संवत् ११६९ वर्षे वैशाख सुदि १० दिने सन्ध्यालग्ने श्रीदेवभद्रसूरिणा, चित्रकूटे श्रीमहावीरभवने, नाम श्रीजिनदत्तसूरिरिति जातं । सर्वेऽपि साधवः स्वीयस्थाने गताः । इत्थैको महात्मा श्रीजिनवल्लभेन गच्छान्निष्कासितोऽभूत्, असह्यप्रतिकरुणापराधेन । स तदा समागतः ममोपरि कृपां कुरुत ।

गुरुभिः क्षिप्तः । आगताः साधवः । अहारार्थं मुखगच्छिका प्रति लेखयतो गुरोश्चोलपट्टः स्फाटितो, ज्ञात गच्छो द्विधा मविष्यति । तदा वारिकरणान्तरे त्रयोदशाचार्यैरुक्त एष माह्यः कृतोऽस्ति, अस्य दृष्ट्या आहारो न कर्तव्यो भवद्भिः । गुरुभिरुक्त—अयं क्षिप्तो मया गच्छे । कुपिता आचार्याः—अद्यैव स्वयं कर्ता जातः । अयोग्योऽयमस्माकं न पृच्छति । सर्वैर्मिलित्वा निष्कासितो गुरुर्गच्छात् । ततः पट्टाभिपेक्षकारकस्य श्राद्धस्योक्त गुरिणा वर्षत्रयं यावत् मम मार्गोऽपलोक्ष्यो भवता, यदि मम माहात्म्यं भवति तदाहमेव भवतो गुरुः, नान्यथेति । त्रिस्थानकेन निर्गतो गुरुः क्रमेण विक्रमपुरे समागतः । तत्र मरकोपद्रवो महान् । जर्जः पृष्टा गुरवो, गुरुरूचे—यस्य चत्वारः पुत्राः सन्ति स एकं मह्यं ददातु, यस्य च तिस्रः पुत्र्यः स एका चेति । तैर्मणितं गते उपद्रवे दास्याम इति । ततो गुरुणा 'तं जयत' इति नाम स्तननं कृतं । तन्माहात्म्येन शान्तिर्जाता । तत्रैव पुरे पञ्चशतप्रमाणाः शिष्याः जाताः । साध्वीना त्रिशतं जातम् । सर्वेऽपि श्रावकाः जाता इति । ततो विहृत्य गुरवो नारनडलपुरे गताः । तत्रेश श्रीमालश्रावकस्य जामाता त्रिगहसमये एव मरणधर्मं प्राप्तः । तेन सार्धं कन्याया अपि काष्ठ-मक्षणं कारयन्ति जनाः । सा भीता गुरुणा पार्श्वे समेता । तदा गुरुभिरुक्तं पित्रो 'अयुक्त-मेतत् क्रियते' । पितृभ्यामुक्तमावयोनित्यशल्यं भविष्यति । गुरुभिर्गृहीता कौमल्यसाध्वीना दत्ता 'तया एषा पाठ्या' । तस्याः पार्श्वे द्वादश वर्षाणि स्थिता । ततो गुरुभिर्दीक्षिता । तस्या वस्त्रे नह्यः पटपद्यः पतन्ति । साध्वीभिरुक्तं गुरुणा एषा अतीनाहण्डा एतस्या वस्त्रे पतन्ति यूकाः । गुरुभिरुक्तं एषा सप्तशतसाध्वीना गुरुणा भविष्यति । तदैव तस्याः साध्व्याः सर्वाः शिक्षणीत्वेन दत्ताः, महत्तरापदं च दत्तं । कौमल्यसाध्व्या सा महत्तरा पृष्टा तयास्माकं किमपि कथनं करणीयं, अस्माभिस्त्व पाठिता । तयोक्त—उदत्तं किं करोमि । तामिरूचे—धर्मं च्छजे दशाकाः प्रलम्बाः कार्या इति । प्रतिपन्नं तद्वचः, अध्यापि तथैव जायते इति । तदा गुरुणामतीना माहात्म्यं वर्धते स्म । आचार्यः पुनर्गच्छे समानीता गुरवः । सर्वेऽपि माधवो गुर्नाज्ञाया प्रवर्तते स्म । ततस्तेभ्य एक आचार्यो निर्गतो रुद्रपल्लीयगच्छो जातः । अन्यदा जिनदत्तसूरय सिन्धुदेशे प्राप्तः । तत्र मूलराणे चतुर्मासं स्थिताः । तत्र कौमल्यगच्छीयाः श्रावकाः महद्दिकाः, खरतराः सामान्याः । तैस्त्वत्तं खरतराणां महत्त्वपातकं करोमि (कुर्मः) । तदा हाथी इति नामा लूणियागोत्रीयः श्रावकः सामान्योऽस्ति । अथ यदा धर्मदेशनावसरे हाथी श्रावकः समागच्छति तदा श्रीजिनदत्तसूरिः प्रभूतं सत्कारं ददाति । अन्ये श्रावकाः कथयन्ति—किमर्थमस्य बहु सत्कारं दत्तम् । गुरुभिरुक्त—एष हस्ती राजद्वारे शोभते । महति कार्ये समेष्यत्यसौ । अन्यदा कौमल्यश्रावकैर्वहुं धनं दत्त्वा पातिमाहिर्वशीकृतः, कथितं च तैः खरतराणां शिरच्छेदं कुरु । साहिनोक्तं—कथं ज्ञास्यन्ति खरतराः, कथं च भवन्तः । तैरुक्तं ये कौमल्यास्ते तिलकं विधाय मस्तेके समेष्यन्ति, ये तु तिलकवर्जितास्ते खरतरा इति । ता वार्ता श्रुत्वा हस्ती रात्रौ गुरुसमीपे समेतो वार्ता चोक्ता । गुरुणोक्तं—त्वया हि धीवीपार्श्वे सुन्दरं भविष्यति । सोऽपि धीवीपार्श्वे गत्वोवाच श्रुतिम् । ममाद्यं मरणं, तेनाह मिलनाय समेतः ।

तस्या अग्रे वार्ता प्रोक्ता । सापि गता साहिपार्थे एष हस्ती मम भ्राता । अनेन सार्धसहमपि मरिष्यामि । साहिनोक्तं—प्रभाते वैपरीत्यं विधास्यामि, मा कुरु चिन्तां । प्रगे कौमाल्यश्रावकाः सतिलकाः सर्वेऽपि समेताः खरतरा अतिलकाः । पतिसाहिना वभापे—कपाटं दत्त्वा ये सतिलकास्ते सर्वेऽपि वध्याः, ये तु अतिलकाः ते न वध्याः । ततः सर्वेऽपि मरणभयेन तिलकमपनीया-पनीय हस्तिपृष्ठौ लयाः । सर्वेऽपि खरतराः सिन्धुमण्डले । तदा गुरुभिर्हस्तीकस्य आजितशान्तिस्तवो दत्तः । अन्यदा गुरूणां प्रोक्तं मिलित्वा सिन्धुदेशस्थैः श्रावकैः ‘अमास्कं गृहे यथा बहुधनं भवति तथा कर्तव्यं । गुरुभिरुक्तं—नागपुरात् परतो गत्वा मकडाणा ग्रामे द्वात्रिंशदङ्गुलप्रमाणं प्रतिमां कारयित्वाऽमुकनक्षत्रेऽमुकवेलायां च, ततस्तां रुतमध्ये प्रक्षिप्यान्नानयत यूयं परं मार्गे न कस्यापि गृहे भोक्तव्यम् । ततस्तां शुभवेलायां स्थापायेष्यामि । यत्रतत्र लक्ष्मीः स्थास्यति स्वयमिति । ततस्ते तत्र गताः, प्रतिमा कारिता, तेऽन्तरा नागपुरे समेताः । तत्र पुरे शान्तिमूरिनामाचार्यस्तिष्ठति । तेन रात्रौ लक्ष्मी उज्जमाना कैश्चित् दृष्टा । उत्थितो ध्यानेन कञ्चन देवं समाह्वयति स्म । सोऽप्यागतः, प्रोचे प्रतिमया सार्धं लक्ष्मीर्याति, जिनदत्तसूरिराकर्षति । प्रतिमा अप्रतिष्ठिताऽस्तीति । प्रभाते तेन श्रावकाणामग्रे प्रोक्तं—एते सिन्धुदेशीया वणिज आयाताः सन्ति तान् सर्वानपि मन्थ्य भोजयत, यथा लक्ष्मीर्नागपुरान्न याति । श्रावकैर्गत्वा ते सर्वेऽपि निमन्त्रिताः भोजिताश्चेति । ततस्तेनाचार्येण रुतमध्यस्थिता प्रतिमा प्रतिष्ठिता अञ्जनशिलाकया तत्रैव रक्षिता, तैः श्रावकैर्न ज्ञाता तामेव प्रतिमां लात्वा गुरुसमीपे समेताः । गुरुभिरुक्तं—रछो-हरीया यथा याताः, किं कृतं, प्रतिमा प्रतिष्ठिता सूरिणा लक्ष्मीस्तत्रैव स्थितेति । तैरुक्तं—पुनरन्यमुपायं कथयत, सावधानतया तं करिष्याम इति । गुरुभिः कृपापरैर्भूय उक्तं—भटनेर नगरे श्रीमहावीरप्रासादे श्रीमाणिभद्रयक्षप्रतिमास्ति तामानयत । ततश्चत्वारः श्रावकाः व्यापारमिषेण तत्र गताः, नित्यं जिनार्चां कुर्वन्ति । अन्यदा लब्धावसराः प्रतिमां गृहीत्वा निर्गताः । पृष्ठतो बाहुरिका अपि चलिता ज्ञातव्यतिकराः । क्रमेण सिन्धुदेशे उच्चनगरे रिपडी-नद्याः पार्श्वे पञ्चनद्यो वहन्ति, पञ्चनद्योर्ण जलं । तत्र ते समेताः, बाहुरिका अपि समाजग्मुः । ते प्रतिमां गृहीत्वा नद्यां प्रविष्टाः । ते अपि प्रविष्टाः । तद्भयेन प्रतिमा तैर्नद्यां मुक्ता । बाहुरिकाः संशोध्यालभमानाः प्रतिमां गताः परभूमिभिया । तैः समाचारा जिनदत्तसूरीणां निवेदिताः । गुरवोऽपि नद्यां समेताः । आराधितो माणिभद्रः । प्रत्यक्षी भुत्वोवाच—अहमत्रैव स्थास्यामि बहिर्नागच्छामि । अत्रैव स्थितः, सान्निध्यं करिष्यामि । ततः श्रीजिनदत्तसूरि पार्श्वे माणिभद्रयक्षेण सप्त वरा मार्गिताः । तद्यथा—भट्टारको यः पञ्चनदीः साधयति स सिन्धुमण्डले समेति १ । सूरिः सदा सूरिमन्त्रसहस्रप्रमाणं जपेत् २ । सामान्यसाधुः शतत्रयप्रमाणं जपेत् ३ । खरतर श्रावक उभयोः सन्ध्ययोः सप्त स्मरणानि पठति ४ । श्राद्धः प्रतिगृहं द्विशतप्रमाणां क्षिप्रचर्टां पठति ५ । श्राद्धः प्रतिगृहं आचाम्लद्वयं मासमध्ये करोति ६ । पदस्थो यो भवति स एकाशनेन भुञ्जते ॥ तथा श्रीजिनदत्तसूरीणां सप्त वराः प्रदत्ताः माणिक्यभद्रेण । तद्यथा—प्रतिग्रामं श्राद्ध एको मुख्यः सधनश्च भविष्यति १ । श्राद्धः

सर्वथा निर्धनो न भविष्यति २ । खरतरः श्राद्धः कुमरणेन न भविष्यति ३ । साध्वीना रतिर्न भवेत्यति ४ । भयन्नाम गृहीते त्रिद्युन्न पतिष्यति ५ । निर्धनः श्राद्धो यः सिन्दुदण्डे समेष्यति स सधनो भविष्यति ६ । भयन्नाम्ना श्राकिन्यो न लभिष्यन्ति ७ । श्रीगुरुणा पार्श्वे सर्वदा समेति । परस्पर प्रीतिर्जाता । एकदा पीरैः पार्श्वत् रूप्यमुद्रागत दर्शित, गुरुभिः सुवर्णमुद्रासहस्रक दर्शित आमनाथः । एकदा पीरे स्थिते साधवः आहारार्थं गताः म्लेच्छैरुक्तं—अस्माकं भोजनं देय । तैरुक्तमयुक्तमेतत् । गुरुभिस्ते म्लेच्छाः समाहृताः, उक्त चात्र तिष्ठत, भोजन दापयिष्यामः । श्रायकानाहूय तेषा मिष्टभोजन कारित । एवं वारद्विक, तेन ते सन्तुष्टाः । एकदानसरे संग्रामे मृताः । सजाता देवाः । रात्रौ श्रीगुरुणा स्वप्नान्तरे प्रत्यक्षी नभूव । कुगरुमाकं स्थान ? श्रीपूज्यरुक्त-पञ्चनद्या, यत्र माणिभद्रो यक्षोऽस्ति तत्र द्युयमपि उमत । भोजन याचित तथैव गुरुभिर्दोषितं, सन्तुष्टाऽतीव । एकदा देराउरस्वामीहिंदुको राजपुत्र स क्रमेणातीव निर्धनो नभूव । गुरुणा पार्श्वे ममेतः साधूना भारनाहको जातः, सुखेनाजीविका करोति । गुरुरस्तुष्टा । तेन देराउर-दुर्गः कारित । सोमात्प्यस्तस्य सेरकोऽभूत् । सोऽपि सग्रामे प्रहर्षैर्जर्जरीकृतः गुरुभिरनशन दत्त । मृत्वा व्यन्तरो जातः सोमाहः । सोऽपि समेतो गुरुः पार्श्वे स्थान देहीति वदन् । गुरुभिः पञ्चनद्या स्थापितः । अथ तत्र देशे सिलेमा पर्वते तत्र पोडीयो धेत्रपालः, स देशाधि-ष्टायकः । माणिभद्रप्रमुखा देवास्तमूचुः—प्रथमतः ये तत्र पूजा करिष्यति पश्चाद्वय पूजा तस्य ग्रहिष्यामः नान्यथा । तेन प्रथमतः स पूज्यते, ततो माणिभद्रः सपीरः । एकदा श्रीगुरुभिरुक्त-‘प्रतिवर्षं न कोऽपि भयता पूजा करिष्यति, येऽस्माक पट्टस्थायी भविष्यति मं एकत्रो विस्तारेणा-गत्यात्र पूजा करिष्यति’ इति पद्धतिः निहिता । खरतरगच्छाधिष्ठायकाः पञ्चनदीनास्तव्यदेवा सुप्रसन्ना भविष्यन्ति । इति पञ्चनदीपूजास्थापना निचारः ॥

एकदा श्रीजिनदत्तसुरयो दिल्या गताः । तत्र चतुःषष्टियोगिनी-पीठानि सन्ति । न नन्दन्ते स्म । कुपिता योगिन्याश्चिन्तित ‘छलयाम एव’ । अर्थकेन व्यन्तरेणागत्य गुरुणा प्रोक्तं—अत्र योगिन्यः सन्ति, भयतः छलिष्यन्ति, सापधानतया स्थेय । श्रीपूज्यैः रात्रौ महणसी नामा श्रावकस्त समाहूय श्रोक्त चतुःषष्टिः नया पट्टलिकाः कारयित्वा समानय । महत्कार्यमास्ति । तेन रात्रावेव आनीता । श्रीपूज्यैः मन्त्रिताः । प्रातर्व्याख्यानासरे एकस्य श्रायकस्योक्त चतुः-षष्टिः श्राविकाः एकेन टोलकेनाद्य समेष्यति । दक्षिणादिशि स्थास्यन्ति श्वेतवस्त्रा । तामा पट्ट-लिका एताः प्रदेया । व्याख्यानासरे समेताः, श्राद्धेन दत्ताः, सर्वस्थिताः । श्रीगुरुभिर्मन्त्र-प्रभावेण स्थमिताः । व्याख्यानानन्तर गुरुभिरुक्त यात, प्रभाते पुनरागन्तव्य । ता लज्जिताः । अय महानिघापात्र स्वापराध क्षामयतिस्म । वय यामः । गुरुभिरुक्त—किञ्चिदस्माक प्रयच्छत । तामिः सप्त ररा दचास्तद्यथा—खरतरसाधु प्रायो मूर्खो न भविष्यति ? । साध्वी स्त्रीधर्मं न यास्यति २ । खरतरसाधुसाध्वीना न सर्पान्मृत्युः ३ । खरतराणा उचनसिद्धिः ४ । त्रिद्युतो न भय ५ । श्राकिन्यो न च्छलिष्यन्ति ६ । श्रीखरतर श्रावकाः दिल्याः परतः सर्वेऽपि धनयन्तः

पण्डिताश्च भविष्यन्ति ७ । इति सप्त वराः प्रदत्ताः । योगिनीभिरुक्तं—एकमस्माकमपि वचनं कुरु । यथा भवदीयः पट्टे यः कोऽपि गच्छनायको भविष्यति दिल्यां अजयमेरौ भरुकच्छे उज्जयिन्यां यद्यायाति तदा भोजनं कृत्वा याति रात्रौ न तिष्ठति । यदि रात्रौ तिष्ठति तदा भोजनं न करोति इति वाक्यं दत्त्वा गता निजस्थानं । अन्यदा श्रीजिनदत्तसूरयो वडनगरे गताः । तत्र द्विजा बहवोऽतीव द्विपः साधूनाम् । एकदा एका गौः भ्रियमाणा जिनचैत्ये प्रवेशिता, सा रात्रौ मृता, द्विजा हास्यं कुर्वन्ति—एषां देवा गौघातकाः । तत्र नगरे रीतिः—चाण्डालाः पुरमध्ये नागच्छन्ति, प्रतोलीं यावत् स्वामिनो निकासयन्ति । ततस्ते गृह्णन्ति । मिलिताः सर्वे श्रावकाः परं चैत्यद्वारं लघु, तां निर्वासितुं न कुर्वन्ति । श्रीपूज्यानामुक्तं श्रावकैः—‘एतत् विप्रैः कृतं भवदीर्घ्या । श्रीपूज्याः सुप्ताः, शिष्यानां प्रोक्तं—‘मम वस्त्रं नोद्घाटनीयं चतुर्दिक्षु सप्तस्मरणानि पठनीयानि । परकायप्रवेशिनीविद्याबलेन मृता गौरुत्थिता, जिनगृहात् ईश्वरप्राप्तादे पिण्डिकाया उपरि पतिता, जन समक्षं महाचित्रं जातम् । सर्वे द्विजाश्रणे पतिताः । स्वामिन् देव गृहाद् गामपनयत । श्रीपूज्या न मन्यन्ते ततः सर्वैर्विप्रैर्भिलित्वा इति वचनं कृतं यदा खरतरगच्छाधिपतिर्वडनगरे समेष्यति तदा प्रवेशोत्सवं विप्रा एव विधास्यन्तीति । रात्रौ धेनुस्तथाय पुराद्बहिः पतिता । इति परकायप्रवेशिनीविद्या ।

अन्यदा गूर्जरधरित्र्यां नागदेवः श्रावकः चित्ते चिन्तयति ‘श्रीवीतरागैरुक्तमस्ति सर्वदा एको युगप्रधानो भवति । तं वन्देऽहं, परं न ज्ञायते । तत्रार्थे सोऽम्बकादुंके श्रीगिरनारगिरौ गतः । उपवासत्रयं कृतं प्रत्यक्षा जाताऽम्बिका । तेनोक्तं—कथयास्मिन् काले को युगप्रधानो ? अम्बिकयोक्तं—हस्ते तवाक्षराणि लिखित्वा ददामि । य एतानि प्रकटयिष्यति स त्वया युगप्रधानो ज्ञेय इति । तेनोक्तं—हस्तेन कथं भोक्ष्ये ? आशातना भविष्यति देव्योक्तं—न काप्याशातना, याहि त्वं । ततः स पत्तने समेतः । प्रतिशालमाचार्याणां दर्शितो हस्तो । न कोऽपि वाचयति । प्राप्तखेदोऽतीवागतो जिनदत्तसूरिसमीपे नागदेवः । पूज्यानां हस्तो दर्शितः । वासक्षेपः कृतः, प्रकटितान्यक्षराणि । यतः

दासानुदासा इय सर्वदेवा यदीयपादाब्जतले लुठन्ति ।

मरुस्थलीकल्पतरुः स जीयात् युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥

इत्यक्षराणि प्रकटितानि । हर्षितोऽभून्नागदेवः । प्रणति स्म गुरुन् । सर्वत्रापि प्रसिद्धिर्युगप्रधानोऽयं । नागदेव वरसावर्णं उजातिवडेविण, पुच्छिय जुगगुरु कहउ तिणिण उववास करोविण ।

अंबिकहु परतम्बि हत्थि तिण अक्खर लिक्खिय, सोवणमय करि अकट सोय आचारिज लक्खिय

करि वासखेव अणहिल्लपुरि जुगपहाण संजमतिलउ,

जिनदत्तसूरि सुविहितगुरु श्रीखरतरगच्छ गुणनिलउ ॥

अन्यदा श्रीउच्चनगरे जिनदत्तमूरीणां प्रवेशमहोत्सवो जातः, मिलिताः स्वदेश-परदेशीया जनाः । तत्र एको मुलाणापुत्रः सप्तवार्षिकः पतितः चरणग्रहारैर्मृतो । मिलिता म्लेच्छ-जनाः साधूनामुपाश्रये धोरं विधास्यामः । नगरे महानुपद्रवो जातः । साधवो गंतुं समेतुं च न

शक्नुवन्ति । श्रीपूज्यैस्वतन्त्र-जीवन्नमौ कथं भूमौ प्रक्षिप्यते । ततो रात्रौ परकायप्रवेशिनीविद्या प्रारब्धा । एको व्यंतरश्चाकर्षितः । बालकशरीरे प्रक्षिप्तः । व्यंतरेणोक्तं—कदाह ह्युटिप्यामि ? गुरुभिरुक्त—स्लेच्छानामग्रे 'एष बालो यदा महिषीमास अत्स्यति तदा मरिष्यति' इति कथयित्वा जीवितो बालः । मासत्रिके मासं भुक्त्वा पतितः । एकदावसरे अजमेरौ प्रतिक्रमणात्सरे विद्युद् अतीव प्रकाशते उजेहीभवति । ततः श्रीगुरुभिः प्रासुकजलेनामिमत्र्यं स्तमिता । कृते प्रतिक्रमणे मुक्तेति । श्रीअणाहिलपत्तने भाडशालिक आभू सुश्रावकोऽभूत् । तस्मिन्नवसरे श्रीपूज्या मूलराणे नगरे गताः । श्रावकैर्महान् प्रवेशोत्सवो निहितः । तत्र पत्तने वास्तव्यान्धपत्नीय अंभ-नामा श्रावकोऽभूत् । तेनोक्तमत्रैवपि महाप्रवेशोत्सवः क्रियते । अस्मत्पत्तने एवविधः क्रियते तदा ज्ञायते भयता शक्तिः । ततः श्रीगुरुभिरुक्त—अस्माकं तत्राप्येवविधः प्रवेशोत्सवो भविष्यति परं त्वं तत्र प्रवेशोत्सवे जायमाने निर्धनो मस्तके पोडुलिका कूटिका हस्ते च विभ्रत् मिलिष्यसि । तत्रैव जातः । गुरवः पत्तने समेताः । स गुरुणामुपरि द्वेषं वहति । कपटश्रावको जातः । ततः पारणरुदिने अतिथिसविभागं कृत्वा शंकरापानीयमध्ये विपप्रयोगं चकार । तथा गुरुर्विपादिता जातः । ततः आभूसुश्रावकेण योजनगामिनीमुष्टिका प्रेषयित्वा देवतादत्तो रसकूपकः प्रह्लादनपुरादानीतः । तेनामृततरसेन निर्निषा वसुधु गुरवः । ततः सोऽभ्युदः कर्ममशान्मृत्वा दुष्टव्यंतरो जातः । गुरुणा पार्श्वतो भ्रमति छलनाय । अन्यदा रात्रौ पाट्टिकोपरि सुप्तानां रजोहरणं पपात् । तत्प्रातेन गुरवः सप्तभ्रमा जाताः । छलिता व्यतरेण । ततः प्रभातसमये आभूश्रावकप्रमुलः श्रीसद्यो मिलितः । नानाप्रकारो उपचारो निहितः परं तथापि स दुष्टव्यंतरो न मुचति गुरु । ततः श्रावकआभूपुत्री व्यतरं प्रोचे अस्मत्कुडुंने अष्टादश मनुष्याः सति मदीयाः, तान् सर्वान् गृहाण, परमेन गुरु मुच । व्यतरेणार्थितं किमेव सत्यं ददाति नयेति व्याकुलोऽभूत् । गुरवः सावधाना जाताः । शिरसातो गृहितो व्यतरः । मोचितोऽप्याग्रहेणाभूसुश्रावकेणेति । ततः श्रीजिनदत्तसूरयो वर्ष ८४ आयुः प्रातिपाल्य अजयमेरौ स्वर्गं गताः । तत्र स्तूप संघेन कारितः ।

संवत् १२०५ वैशाखसुदि ६ दिने श्रीविक्रमपुरे श्रीजिनदत्तसूरीणां स्वहस्तेन पदे स्थापितः नवमं वर्षं गृहीतदीक्षः श्रीजिनचंद्रसूरिः । तस्य शिरसि मणिरभूत् । स तु एकदा वीरनाथयोगीन्द्रेण दृष्टः । तेन ज्ञातं एतस्य पंचवर्षायुःस्ति । ततो गुरवो दिल्या गताः । तत्र योगिनीभिरुक्त—अनेनास्मदाज्ञालोपिता अथैनं छलयामः । ततो योगिन्यो रात्रौ समागताः धर्मध्वजमाहात्म्येन छलं तासां न लगति । तदा मूपकरूपेणापहृतो धर्मध्वजः । श्रीगुरवो ज-जामरुः । मार्जारीरूपेण धाविता । छलिता गुरवस्तामिः । प्रभातेऽनशनं कृत्वा कोचरश्राव-कस्याग्रे चोक्तं गुरुभिः—मम मस्तके मणिरस्ति स दागममये श्मशाने पार्श्वे दुग्धपात्रं स्थापनीयं तस्य मध्ये पतिष्यति । स गृहे पूजनार्थोऽक्षय धनं भाविष्यति । ततः श्रीपूज्ये परलोके प्राप्ते कोचरस्य सा वार्ता विस्मृता । परं योगिना दुग्धपात्रं मडितं दाघकाले । मणिं लत्वा गतो योगी । दृष्टो वणिजा कोचरेण कलहः कृतः । परं न ददाति ।

ततः श्रीजिनचंद्रपट्टे संवत् १२२३ वर्षे कार्तिक सुदि १३ वच्चेरक ग्रामे श्रीजयदेवा-
चार्येण १४ वर्ष प्रमाणानां पदं दत्तं । श्रीमालतांवी गोत्राभ्यां सा. रामदेव सा. मानदेवाभ्यां
महोत्सवश्चक्राते । श्रीजिनपत्तिसूरिर्वालभावे चारित्रं गृहीत्वा प्राप्तपदः पंचशतसाधुपरिवारेण
हिंसारसमीपे हांसी नगरे समेतः । श्रीपार्श्वनाथप्रतिमा श्रावकैः कारिता । श्रीजिनप्रासादो
नवीनः कारितः । प्रतिष्ठावसरे नरमणिग्राही योग्यपि तत्रागतः । योगिना ज्ञातं अस्य गुरोः
पार्श्वे विद्याऽभूत्, अस्य पार्श्वेऽस्ति न वेति परीक्षार्थं चैत्ये प्रतिमा स्तंभिता । स्थानान्न चलति ।
जनानामग्रे योगी वक्ति मयैषा स्थंभितास्ति युष्माकं गुरुकृत्थापयतु । तत आचार्या उपाध्या-
याश्च सविषादा जाताः । विद्या कस्यापि पार्श्वे नास्ति । ततः प्रतिष्ठांतरायो जातः । तदा साध्व्या
शाक्षिता नार्यो गायंति ' बालचंद्रः चंद्रिकां न करोति, अयं बालो गुरुः किं जानाति ' ।
गुरुभिश्चिताकृता ' धिग् मे जीवितं ' । एकदा श्रीपूज्येन सूरिमंत्रगोलको वीक्षितो मध्ये
सार्धतृतीयाक्षरो मंत्राधिपो स्थितः । निर्वास्य गुरवो जपंति स्म । पद्मावती समेता । प्रभाते
आचार्याः पाठका व्याख्यानं कुर्वति, तावत् बालकैः परिवृतो गुरुः क्रीडां कुर्वन् चैत्ये गतः ।
प्रतिमा स्तंभिताऽस्ति योगी वक्ति । शिरसि वासक्षेपं कृतं, स्तंभितश्च सः । श्रीसंघः सर्वोपि
मिलितः । जाता प्रतिष्ठा अहो गुरुणां लघूनामपि माहात्म्यं । योगी वक्ति मां मोचय, कृपां वि-
धाय । गुरुभिरुक्तं ढिल्यां मम गुरुशिरोमणिस्त्वया गृहीतोऽस्ति तमर्पय । योगिना दत्तो
मणिः । उक्तं चाहो महाभाग्य ! इमां विद्यां गृहाण परमस्य विधिरेवंरूपो वर्तते तांबूलप्रयोगे
सिद्धयति । गुरुभिरुक्तं अस्माकं तांबूलभक्षणं न युक्तं, विद्या सिद्धयतु मा वा । ततो योगिना
मुखात्तांबूलं निर्वास्योक्तं हे विद्ये ! याहि पातालं, तवास्मिन् लोके ग्राहकोऽन्यो नास्ति । ततः
पातालं गता । ततः श्रीगुरुभिः षट्त्रिंशत् भट्टमिश्राणां वादे जेता गच्छपूत्रानां सूत्रधारः
गच्छसमाचारी प्रवर्तकः परमसंवेगी । तस्य वारके नेमचंद्रो भंडारीगोत्रीयस्तस्य पुत्रो देव-
दत्तः, तेनोक्तमहं चारित्रं गृहीष्यामि । नेमचंद्रेणोचे प्रथमतोहं परीक्षां करोमि । यदि कोपि
शुद्धचारित्रप्रतिपालको मिलति तदा तत्समीपे गृणीयाश्चारित्रं । चतुरशीति गच्छवासिनो
गवेपितास्तेन परं ' जे जे दीसंति गुरू समय परिक्रवायति न पुजंति ' इत्यादि भयपरिणाम
आगतः सरस्वतीपत्तने जिनपत्तिसूरीणामुपाश्रये । रात्रौ समुत्थितः अलसेलकूपिका दृष्टा, ज्ञातं
घृतमस्ति । कूणके वर्षाकालार्थं रक्षापि दृष्टा ज्ञातं चूर्णमस्ति । प्रातर्दृष्टं, ज्ञातं एते संवेगिनः ।
ततः स्वकीयगृहे गत्वाऽष्टवार्षिको निजपुत्रो दत्तस्तेन, दीक्षितश्च गुरुभिः । स्वर्ग गते गुरौ
संवत् १२७८ माघ सुदि ६ दिने ।

श्रीसर्वदेवसूरिणां दत्तपदो जावालपुरे पट्टाभिषेकः श्रीजिनेश्वरसूरिः स्थापितः । परं
अभिणितो मूर्खः । पूज्यैर्मरणकाले श्रीलब्धिचंद्रोपाध्यायानां भलामणिर्दत्तः । स तु न पाठयति
भट्टारकं, किं तु स्वयमेव व्याख्यानादिकं करोति, गर्व वहति, यथा मूर्खः श्रीपूज्यः अहं विद्वान् ।
अन्यदा वाग्भटमेरुमध्ये आगताः । तत्र महावीरवसतिं दृष्ट्वा द्वारं संकीर्णं चैत्यं बृहत् । प्रधानं
चावादीत् गुरुः ' ब्रूहा नंदा वसही वड्डी अंदरि कित उक्त मइ माणी ' इति वचनात् प्रकटितो

मूर्खभावः । ततो गता अणहिल्लपुरपत्तन, । मरस्वती नदीतीरे । उत्तीर्णा नदी । पूज्यैश्चित्तित्त-
प्रातः संघो मिलिष्यति, नाहं व्याख्यान कर्तुं समर्थः, तस्मान्मरणमेव मम सुन्दर, इति विमृश्य
स्वयमुत्थितः सूरिः । सूरिमत्र परित्यज्य प्रणिष्टो नद्या मरणाय । ततो भाग्योदयात् सरस्वती-
तुष्टा, वरमिति ददौ—त्वं महान् विद्यावान् भवेः । पश्चादागत्य सुप्तः । प्रभाते मिलिताः सर्वे
लोकाः पूज्याः स्थिताः । लब्धिचन्द्रधितयति—ममादेशः कथं न दीयते भट्टारकाः ! । तत्रादेव
गुरुभिर्नवीनकाव्येनोपदेशोदत्तः । तद् यथा—

अर्हतो भगवत इद्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः

जाचार्या जिनशासनोच्चतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ।

श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः

पचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मगलम् ॥ १ ॥

इत्यादिना चमत्कृत उपाध्यायः अनेक श्रावकाः प्रतिनोधिताः ।

श्रीजिनपत्तिसूरिपट्टे जिनेश्वर सूरिः [तद्] वारके श्रीपत्तने कुमारपालराजा प्रतिनोधकः,
श्रीहेमाचार्यः, त्रिकोटीप्रथकर्ता, अष्टादशदेशेष्मारिघोषणाकारकः, अष्टौ सहस्राः तुरगा
गलितजलपानं कुर्वति । तेन राज्ञा हेमाचार्याग्रे प्रोक्तं यदि सुवर्णपिद्या भवति तदाह विक्रमा-
दित्यसप्तत्सर दूरीकृत्य कुमारसप्तत्सर करोमि । हेमाचार्येणोक्त—खरतरगच्छे श्री हरिमद्र-
सूरिशिष्यरानीन बौद्धपुस्तकमस्ति, तस्य मध्ये सुवर्णसिद्धिनिद्यास्ति । ततः सर्वे खरतर
श्रावकाः गौर्जगतीयाः मौराष्ट्रीयाः कच्छपाचालाः ममुद्रोपकठीयाः कारागारे क्षिप्ताः । तेषां
भूपः शरीरेऽतिव्यथा करोति स्म । तैः श्रावकैर्मिलित्वा गुरुणा परं मुक्त—वयं युष्माकं श्रावकाः,
एष कुमारपालः कदर्थयति । नो येषां रुचिं पुस्तकं मोच्यमेव । ततः श्री जिनेश्वरसूरिभिधि-
नसूत्रे चिन्तामणिपार्श्वनाथप्रासादे भाडागारे पुस्तकं निर्वास्य प्रदत्त । क्रमेणागत पत्तने ।
महोत्सवेनानीत । श्री कुमारपालाद्याः मत्तशतमनुन्याः मश्रीकाः अन्ये पि नहवो जनाः
शालाया स्थिताः सति । इष्ट पुस्तकं हेमाचार्येण । उपरि लिखितमस्ति 'इदं पुस्तकं न छोटनीयं,
न वाचनीयं,—किंतु भाडागारे पूजनीयं ।' ततः शक्तितो मनमि हेमाचार्यो न छोटयति ।
तदा हेमाचार्यभगिनी हेमश्री महचराऽस्ति, तयोक्त—छोटयतु । तैरुक्त—इदं लिखितमस्ति—
'य' छोटयिष्यति तस्य श्री जिनदत्तमूरीणामाज्ञास्ति ' तेन वेमेमि । महचरयोस्त
को जिनदत्तः, न कोपि भवतीयममो गच्छाधिपः । अहं छोटयामि । कुमारपालेन
दत्त । तथा छोटितमात्रे दवरके तत्काल नेत्रद्वयं पतित । अन्या जाता । पुस्तकं भाडा-
गारेमुक्त । रात्रौ बहिल्लप्रः सर्वं पुस्तकं प्रज्वलित । तत्पुस्तकरूपाकाशमार्गेण नीड्वाना समीपे गत ।
श्री जिनेश्वरसूरिपट्टे सप्त १३३१ आर्माजपदि ५ दिने जापालपुरे पट्टामिपेकः श्री
जिनप्रतिनोधसूरिः । तदारके लघुतर खर गच्छो निर्गतः ।

श्री जिनमिहसूरि । श्रीमालजातीय । साधिता तेन पञ्चानती । तयोक्त पण्मासानधि-
रायुरस्ति, नाहं ददामि किंचित् । तेनोक्त मम मोघं देवदर्शनं । तयोक्त झृण्णू नगरे वारी

श्रीमालगोत्रे वणिगस्ति । तस्य पंच पुत्राः । तेषां मध्यात् तृतीय पुत्रः तं शिष्यं कुरु । तस्याहं वरं दास्यामि । तेन तथा कृतं । तस्य नाम श्री जिनप्रभसूरिः । तस्यावदाता बहवः । यथा— गयणथकी जिनि कुलह नांषि ओधइ उत्तारी, किद्ध महिप सुपवाद नयर पिक्खइ नव वारी । ढिलीपति सुरताण पूठि तसु वृक्ष चलाविय, रयणि सेचुंजि सिंहरि दुद्ध जलहर वरसाविय ।

दोरडइ सुद्ध क्रीधी प्रकट जिन प्रतिमा बुल्ली वयणि,
जिनप्रभसूरि सम कवण भरतखंड मंडिण रयणि ॥ १ ॥

इत्यादि प्रभावकः तपागच्छस्य धर्मध्वजदंडीदानं सप्तशतमंत्रप्रदानं काचलीयामंत्र-प्रदानं कृतं । तयगच्छविस्तारो यतो जातः । श्रीअल्लावदीन पातिसाहि प्रतिबोधकः अमावस्याः पूर्णिमासी कृता; येन द्वादशयोजनं यावत् चंद्रोद्योतो जातः । पद्मावत्या कर्णकुंडलोर्षितो यस्य । इत्यादि बहवोऽवदाता इति ।

ततः श्रीजिनप्रबोधसूरिपट्टे संवत् १३४१ वैशाखसुदि ३ दिने जावालपुरे पट्टाभिषेकः श्रीजिनचंद्रसूरिः । छाजहडगोत्रीयः । १३७७ ज्येष्ठवदि ११ दिने अणहिल्लपत्तने पट्टा-भिषेकः । श्रीशत्रुंजये खरतरवसतिप्रतिष्ठाकारकः । श्रीजिसलमेरौ श्रीपार्श्वनाथविंशं प्रति-ष्ठितं । येन श्रीजावालपुरे श्रीपार्श्वनाथप्रतिमा प्रतिष्ठिता । यस्य परिकरे द्वादश शतानि साधुसाध्वीनां जातानि । श्रीमंगलवरनगरे समुद्रवासिनो देवा बहवो मंत्रचलेन वशीकृताः । देरा-उरे स्तूपनिवेशो जातो तस्य । तथाद्यापि प्रत्यक्षं स्मरणेन मेवं समानयति, जलपानं कारयति तृपातुराणां । अर्चित्यमहिमा श्रीखरतरगच्छशक्तिनां साधुसाध्वीश्रावकश्राविकाणां, तथाऽ-न्येषामपि नामग्राहिणां सांनिध्यं करोति, वांडितं दूरयति यो गुरुः ।

ततः श्रीजिनकुशलसूरिपट्टे संवत् १३९०, ज्येष्ठसुदि ३ दिने सिंधुपुरे देराउरपुरे पट्टा-भिषेकः । श्रीजिनपद्मसूरिः । तस्य वारके वेगडनिर्गतः । पट्टत्रिकं छाजहडगोत्राणां जातं परमस्मा-कमेवगोत्रीयाणां दास्यामः पड्डं, नान्येषां; तेन सीगडेन आता वेगडः स्यापितः । श्रीसत्यपुरे वाराही साधिता । ऊधरणक्रेटके खरतरश्रावका जाताः । तत्पट्टे श्रीजिनलब्धिसूरिः । संवत् १४०० आसाढ सुदि १ पट्टाभिषेकः । कूर्चालसरस्वती । तस्य वारके अजयमेरौ 'हिन्दुक राजा' वीरलदेराजा । खरतराणां चतुरसीति शिष्याः व्याकरणपाठकाः । सप्तशत पौषधाः । घंटाशब्देन आलोचनं क्षामणं कुर्वति ते । तदानवदीन पातिसाहभयेन पद्मावती प्रहिता । गुरु-भिरुक्तं च शुद्धिं कृत्वा एहि । म्लेच्छैर्वद्धा देवी । अकस्मादागतो बहुसैन्यः । सर्वे प्रणष्टाः । देव्योक्तं अहं वद्धा म्लेच्छदेवैः । अथाहं न स्मरतव्या नागच्छामि । म्लेच्छवाहुल्यं जातं । गुरुभिः पंचशिष्याः, महर्षिकाश्च पंचश्राद्धा निर्वासिताः निखातद्वारे ।

संवत् १४०६ महासुदि १० दिने पट्टाभिषेकः श्रीजिसलमेरुदुर्गे तत्पट्टे श्रीजिनचंद्र-सूरिः । उद्यतविहारी परमसंवेगी ।

संवत् १४१५ आसाढसुदि १३ श्रीस्तंभतीर्थे पट्टाभिषेकः, तत्पट्टे श्रीजिनोदयसूरिः । तस्येदं माहात्म्यं जातं । येषां शिरसि बालत्वे वासक्षेपः कृतस्ते सर्वे संघपतयो जाताः । शिष्याणां

शिरसि वासक्षेपे सर्वे पट्टस्था जाताः । प्रतिमाः प्रतिष्ठिताः ताः सर्वा मूलनायका जाताः । श्री-
मालवदेशे माडननगरमध्ये श्रावका नहरो घनाढ्या जाता । प्रासादाः प्रतिष्ठिताः ।

संवत् १४३३ कालगुनवदि ६ दिने श्रीअणहिल्लपत्तने पट्टाभिषेकः तत्पट्टे श्रीजिनराजसूरिः ।
तस्य वारके वाचनाचार्य श्रीक्षेमक्रीतयो जाताः । साधितघरणेद्रा । दीक्षितानेकशिष्या ।
पट्टिशतवाचका , द्वादशपाठका , क्षेमधारि (डि ?) त्रिभुता ।

पुनस्तस्य वारके आचार्याः श्रीजिनवर्धनसूरयः । तं श्रीजिसलमेरो पार्श्वनाथचैत्यमध्ये
गमारकात् क्षेत्रपालो निर्वासितः । तेन कुपितेन प्रतिज्ञा कृता अह त्वा गच्छान्निर्वासयामि । रात्रौ
स्त्रीरूपेण समागच्छति । ततश्चित्रकूटे गता । तत्रापि क्षेत्रपालो नारीरूपेण पश्चिमरात्रौ उपाश्रये प्रवि-
शति, निर्गच्छति । तथा पूर्वं सा० सहना नेल्हणाऽऽचार्यस्य पट्टस्थापनं कारितमभूत् । तदा आचार्य
रक्षाविधानमर्दलकं दत्तमभूत् । राजनस्यकारक । तस्मिन्नरात्रे क्षेत्रपाले निर्वासितः आचार्य तत्र
सर्वसद्यो मिलितः । नाल्हारुयो निघनासुतः । स तु नाहूतः आचार्यमर्दलको गृहीतः सहणापा-
र्यात् नाल्हारुस्य दत्तः । तत्र प्रभावेन पा (ग्या ?) रादीनसुराण पार्श्वे गतः सम्मानितः ।
सहणाख्यो वदिगृहे क्षिप्तः । तदा पीपिलिया सरतरगच्छो निर्गतः ।

ततः सप्तभिर्मकारैर्मुहूर्त्तं मीलयित्वा भाणसेलु ग्रामे १, भणीसालीगोत्रे २, भौम-
घारे ३, भद्राकरणे ४, भरणीनक्षत्रे ५, भागकृतगृहनामा । संवत् १४७५ माघसुदि १५
दिने भद्रारकश्रीजिनभद्रसूरिः स्थापितः । श्रीसागरचद्रसूरिभिर्मत्रो दत्तः । रात्रौ सूरिमत्र ममवस-
रणं गृहीत्वा प्रणष्टाः । श्रीजिसलमेरो आगताः । तत्र महोत्सवाः सजाताः । सं० पाचाकेनप्रासादः
कारितः श्रीसभयनाथस्य । तत्र पुस्तकभडागार स्थापित । क्रमेण सप्त प्रासादाः प्रतिष्ठिताः ।
संखवालगोत्रीयः श्रीकीर्तिरत्नसूरीणामाचार्यपददत्त । तस्य वारकेग्रामे २ पुरे २ श्रावका घनाढ्या
जाताः । तस्य शतवर्षप्रमाणं जातमायुः । तस्पाष्टादश शिष्याः जाताः श्रीसिद्धान्तररुचिमहो-
पाध्यायश्रीकमलसयमोपाध्यायादयः ।

संवत् १५१५ वर्षे वैशाखवदि २ बुधवारं अणहिल्लपत्तने पट्टाभिषेकः श्रीजिन चद्रसूरिः ।
तत् स्थापितः श्रीजिनसमुद्रसूरिः । संवत् १५३३ वर्षे महामुदि १३ दिने श्रीपुजपुरेपट्टाभिषेकः ।

तत्पट्टे चोपडागोत्रे म० १५५५ वर्षे श्रीवीकानेरवास्तव्यम० कर्ममीकृतनटीमहोत्सवः
श्रीजिनहंससूरिः । द्विल्या सिकदरपातिसाहिना कारागारे क्षिप्तः । मालयानास्तव्यमोहागदेश्रादि-
कया 'चतुर्दससाधुसमानं वनकं ददामीति प्रोक्तं' तथापि न मुचति । सिकदरस्य प्रतिज्ञा येन मया
बद्धो मुखेन तेन कथं नञ्चि मुचयेति पचशतंदिनं एकस्थाने स्थिताः सति । तदा क्षेत्रपालः
शय्यायाः अधः पातयति, साहिं तथापि न मुचति । तदा जेसलमेरुत् क्षेत्रपालः समेतो गुरु प्रत्यु-
चे यूयं वदथ एनं मारयामि । पूज्यैरुक्तं—नायमस्माकमाचारः । क्षेत्रपालेनोक्तं—भयतो नयामि
जेसलमेरु । पूज्यैरुक्तं—अन्येषा साधूना का गतिः ? तेनोक्तमन्यानपि क्रमेणानयिष्यामि । पूज्यै-
रुक्तं—नाहं प्रच्छन्नवृत्त्या यामि, तस्करवत् । ततः सूरिणा सुग्मिप्रो ध्यातः । आगता शासनदेवी ।
तयोस्त—पश्यतु भयतो मम माहात्म्यं । तथा साहिंशरीरे महावेदना कृता । यथायथोपायान् कुर्वति

तथातथाऽधिकतरा जाता । तदा वेदनापीडितो गुरुचरणयोः पतितः । भवंतः पूज्याः गच्छंतु निजं स्थानं । पूज्यैरुक्तं यदि सर्वेषां वंदिमोचनं करिष्यासि तदा याभि, नान्यथा । सर्वेपि मोचिताः । अतीव माहात्म्यं जातं । श्रीजिनहंससूरिवारके श्रीशांतिसागरसूरिभिः प्रतिष्ठा कृता । शिष्यदीक्षायां विरोधो जातः । तत्राचार्यायो गच्छो निर्गतः । तत्रधाडीवाहागोत्रे टाटीयाशाखे सा० ठकुराकेन लक्षत्रयद्रव्यदानेन मंडोवरे राजा वशीकृतः । दोसीसाखे श्रीजिनदेवसूरीणां स्थापना कृता ।

श्रीजिनहंससूरिपट्टे चोपडागोत्रे अणाहिल्लपत्तने बलाहीदेवराजकृतमहोत्सवः संवत् १५८२ वर्षे भाद्रवावदि १३ पट्टाभिपेकः श्रीजिनमाणिक्यसूरिः । अनेकशास्त्रवेत्ता । तेन द्वादश पाठकाः स्थापिताः । एकनद्यां चतुःषष्टि शिष्या दीक्षिताः । सिंधुदेशे सा० धनपतिकृतमहोच्छ्वेन पंचनद्यः साधिताः । तस्य वारके श्रीकनकातिलकोपाध्यायादिभिः क्रियोद्वारः कृतः । श्रीदेराउरे यात्रार्थं गच्छद्भिरेव स्वर्गप्राप्तः ।

संवत् १५९५ जन्म, संवत् १६०४ दीक्षा, तत्पट्टे रीहडगोत्रे संवत् १६१२ वर्षे भाद्रपद ९ दिने गुरुवारे श्रीजिसलमेरुनगरे राउलश्रीमालदेवकृतमहोच्छ्वो भट्टारकः श्रीजिनचंद्रसूरिः स्थापितः । संवत् १६१३ वर्षे श्रीविक्रमनगरे चैत्रमासे सप्तमीदिने क्रियोद्वारः कृतः । तेषां चेतेश्वदाताः श्रीफलवर्धीताद्यचैत्यतालकोद्घाटकृत । पुनः संवत् १३४३ वर्षे ताद्यधर्मसागरकृतग्रंथछेदकृत । श्रीअकबरसाहिप्रतिबोधकारी । तत्साहिवचसा युगप्रधानपदधारी । संवत् १६५२ वर्षे नानगानिकृतमहोत्सवेन पंचनदीनां साधकः । सिंधु १, वहव २, वनाह ३, रात्री ४, घारड ५ इति पंचनद्यः, तथा स्तंभतीर्थे वर्ष यावत् मीनरक्षाकृत । श्रीज्येष्ठ पर्याणि सर्वत्राष्टदिनानि यावदमारी प्रवर्तकः । श्रीशत्रुंजयादि तीर्थेषु चैत्यप्रतिमा प्रतिष्ठाकृत । श्रीविक्रमपुरे ऋषभविवादिप्रभूतविंवप्रतिष्ठाकृत । श्री साहि सलेमराज्ये ताद्यकृत श्रीजिनशासनमालिन्यतः श्रीसाधु विहारो निषिद्धः साहिना । तत्रावसरे श्री उग्रसेनपुरे गत्वा साहिं प्रतिबोध्य च साधूनां विहारः स्थिरीकृतः । तदा लब्धः सर्वाङ्ग युगप्रधान वडागुरुरितिविरुद्धो येन गुरुणा । एवमवदाता भूयांसः संति सुप्रसिद्धाः । तेषां निर्वाणं श्री वीलाडापुरे १६७० वर्षे आसूवदि २ दिने । स्थूपस्थापना । तस्य वारके श्रीसागरचंद्रसूरिसंतानेऽनुक्रमेण भावहर्षसूरयो निर्गता इति ।

तत्पट्टे श्री जिनसिंहसूरिः चोपडागोत्री कोटिद्रव्यव्ययेन मंत्रिराज श्रीकर्मचंद्रेण कृतनंदीमहोत्सवः श्रीलाभपुरे । नन्निर्वाणं तु मेदनीतटे संवत् १६७४ वर्षे पोसवदि १३ दिने ।

तत्पट्टे गुरु श्रीजिनराजसूरिः । संवत् १६७४ वर्षे फागुण सुद ७ दिने संघपति श्री आसकर्णेन कृतनंदीमहोत्सवः । तस्मिन्नेव दिने श्रीजिनसागरसूरीणामाचार्यपदस्थापनेति । कियत् काले निर्वासिताः । श्रीमज्जिनराजसूरिः तस्य पट्टे विद्यमानगुरुः ।

Acharya Shree Jin Dhareezandra Suri

SHRI PUJYAJI MAHARAJ, 

BHARUNJIKI - RASTA

JAIPUR CITY.

अनुक्रमणिका

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
अक्षर (-साहि)	१३, १४, २६	आकषाम	३६
अक्षराभाद	३६	आकरपुर	७
अक्षरान (मंत्री)	३६	आगरा (-नगर)	१३, १०, २३, ३६
अक्षिव्यायन (गोत्र)	६, १५	आचाय स्नातक शाला (आचार्यीय गच्छ)	३३, ५६
अक्षदास	४१	आदि (गोत्र)	३७
अक्ष	४०	आद्यपतीवण	७
अक्षर (अक्षर, अक्षर, —दुग, —नगर)	४, ११, २५, २७, २८, ५०, ५१, ५४	आद्य (अर्बुदादि, अर्बुदाचप)	३, १२, २१, ३२, ३३, ३७, ४३
अक्षित्यालिनद	४८	आद्य	२६, २७, ५१
अक्षित्यरतन (-पाटण, पुरपत्तन, पाटक, पुरपाटण)	२१, २६, २७, २८, ४४, ४०, ४१, ५३-५६	आयचम	६
अनायदेष्ट	१७	आयनन्दि	२
अनूपवंद	३८	आयभद्र	६
अनूपकृमार	१०, २३	आयमहागिरि	६, १७
अनूपदेव सुरि (आचाय)	३, १०, २३, २४, ३४, ४५, ४६	आयमंगु	६
अनूपर	४०	आयंरक्षित सुरि	२, १६
अनूपधम	३६	आयंवरदि	६
अनूपका टुक	५०	आयग्याना	६
अनूपिका (अम्बा)	१०, २१, २२, ३६, ४०, ४३, ५०	आयसमुद्रसुरि	६
अनूप	११, २६, ३०, ३६, ४१	आय संमृति विज्ञय	६
अनूपोद्देश	२०	आयं एदस्ति सुरि	६, १७
अनूप्या	३८	आरामन नगर	४३
अनूपेय कृपिका	५२	आयभक्त न्युक्ति	१७
अनूपदीन (पाणिप्राहि)	५४	आयभक्त सपुत्रुक्ति	३
अनूपी ('अनूप')	१७	आपाडाचार्य	१७
अनूपी एकुमास	१७	आमकरण (-साहि)	१४, ३४, ३६, ४०, ५६
अनूपक (३५ निहय)	१७	आनावलिपुर	३५
अनूपमित्र	१७	आसाधीर	१२
अनूपरायाद (शत्रुनगर)	१३, २३, ३६, ३६, ३८, ४०	आमानगर (-पुर)	११, २५
		आरक्षिक मत्र	२६

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
इन्द्राकु कुल	१५	कन्नडा	११
इन्द्र	१६	कन्नडनिष्क उपाध्याय	५३
इन्द्रविद्य सूरि	१८	कन्नडवंश (कन्नडवर्णित)	२४, ४५
इन्द्रभूति (गौतम)	१५	कन्नडसंगमोपाध्याय	४५
इंदपालसरग्राम	३०	कन्नडादेवी	३०, ३३
इंदोर (पुर)	५०	कर्मसंग	४, १०
ईश्वर (साह)	३१	कर्मचंद्र, (कर्मसिंह, कर्मामी—मंत्री)	७, १२-१४, २३-२५, ३६, ४४, ५६
ईश्वरी	१८	कन्नडादेवी	३६
उपसेन	४१	कन्नडसूत्र	१७
उग्रसेनपुर	१८, ५१	कन्नडादानंदिर	१८
उचनगर	२४, २६, २८, ४०	कन्नडाचारणी	२०, २१
उद्वरंग देवो	४१	कन्नडाया सर	३८
उज्जैन (अग्रन्ती)	२, १०, ११, १४, २५, ४०	कन्नडुरचंद्र गण्डि	४२
उज्जंती (गिरनार देवी)		कन्नडूर घाट	३६
उत्कोयिक गोत्र	१८	काकन्दी (नगरी)	१७, ३८
उत्तराखंड	२०	काकलीया मंत्र	५४
उदयकरण	१२	कात्यायन गोत्र	६, १६
उदयपुर	३७	कालिकाचार्य (१) [-श्यामाचार्य]	६, १८
उद्योतन सूरि	३, १०, २०, ४३	" (२) [गह निहोच्छेदक]	६, १६
उपसगहर लोत्र	६, १७, २५	" (३)	१६
उमास्वाति (-वाचक)	२, ६	काशी	३८
ऊवरण (-मंत्री)	२८, २६	काश्यप (-गोत्र)	६, १५
ऊवरण केटक	५४	किसनचंद्र	४१
ऋषभदत्त-श्रेष्ठी	१, ६, १५	कीर्तिरत्न [सूरि, -आचार्य]	१२, ३२, ३३, ५५
ऋषभेश्वर	२०	कीर्तू	१०
एलापल	१७	कुमतिकुट्टालग्रंथ	३४
ओसवंध	१०	कुमारपाल (-राजा)	२६, ४३
ओसीया नगर	१०	कुलक	१०
कचोलान्ना	४६	कुलधर	२६
कच्छदेय (पांचाल)	२७, ३६, ५३	कुलागसत्तियेय	६
		कुसनाया ग्राम	३०
		कुंभलमेरु (-नगर)	१२, ३२, ३३
		कुंवरपाल (उपाध्याय)	२४
		कुवला	२२

୨	କାଳୀ ସପ୍ତମ	୨୧	ସାମାନ୍ୟ
୨୧	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୧୨	ସାମାନ୍ୟ
୦୧'୨୧'୩୫	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୦୬	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫'୧୫	କଥାରେ	୪୩'୧୫	ପାଠ୍ୟ
୧୫'୧୫	(୧୫ -) ଦ୍ଵିତୀୟ	୧୧	ପାଠ୍ୟ
୧୫'୨୧'୩୫	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୫୧	କଥାରେ
୧୫'୧୫'୦୫'୧୫'୨୧'୩୫	(୧୫ -) ତୀର୍ଥରେ	୪୨	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫'୧୫'୦୧	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୫୧	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୦୧'୧୫	ପାଠ୍ୟ
୧୫'୩	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୦୧	ପାଠ୍ୟ
୫	କଥାରେ	୨୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୦୧	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୪୧	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫	(୧୫) କଥାରେ	୫୧	(୧୫) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) କଥାରେ	୧୫'୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) କଥାରେ	୧୫	ପାଠ୍ୟ
୦୧	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	(୧୫) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୪୧	ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୧୫'୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) କଥାରେ	୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) କଥାରେ	୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	ପାଠ୍ୟ
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା
୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫'୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍	୧୫	(୧୫ -) ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବତ୍
୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା	୧୫	କଳ୍ପମୁଦ୍ରା

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
जुनागढ (जीर्णगढ)	३३,३६	धिरापद्रनगर	२६
जेमलमेर (-दुर्ग, -नगर)	६,७,११ १३,३० ३६,४१,४७,	थूलिमद्र	८
	४४-४६	दृत्त	३०,३२,४४
जेसल साह	३१	दयासार	३८
जेनराजी (वृत्ति)	३६	दणपुर	१६
जोघायो	४१	दृष्टवैकालिक सूत्र	१०,१६,२२,२४,४४
जोरावर मल्ल	३६	दक्षिणदेश	१८,२८,३८
झुम्फू नगर	४३	झाडिमदे	४१
ठाडिया शाखा	५१	झाडाजी	३०
ठाड्या	५६	झिगम्बर	१६
डागा (गोत्र)	१२,२७,४१,४२	झिन्न सूत्रि	१८
दुगरसी	७,१३,३३,४१	झिला (टिछी)	११,२२,२३,२४,२७,२८,३०,४४,
देहरा	४१		४६ ५२,५५
दत्ता (-गाय, -गच्छ)	२६,३४,३६,५४	झिलोपत्ति	५४
दक्ष्याप्रभ (-सूरि, -ब्राह्मण)	११,१२,३१	झिलोमण्डल	४४
दारादेवी	३६,३६	झुगप्रबोध	२६
दाबी धीमाल (गोत्र)	५३	झुपलिका पुण्यमित्र सूत्रि (झुपलिका पत्र)	२,६,१६
दामरी नगर	३४	झुलम (-नरपति, शृप, -राज, -राजा)	३,१०,२१,२२,४४
दिल्लोकचंद	३६,४२	झुप्प्रसह सूत्रि	१५
दिल्लोचनो (साह)	३६	झडिवाद	१८
दिल्लोचन (२ रा निहच)	१५	डेका (-साह)	१३,३३
दुङ्गीयायन गोत्र	११	डेराडर (-दुर्ग, -नगर, पुर)	३०,३१,३४,४६,५४,५६
दुम्बरवन ग्राम	१८	डेसवाहा (नगर)	३२
देवपाल	११,३०	डेवदया देवी	२७
देजली	३६	डेवकुलपाटक	६
धम्भावतीपुर	५५	डेवद्विगणिका जम्भाधमय	६,१६
धारावाहादामिध पाठक	२६	डेवदत्त	५२
धियाती	११	डेवमद्र सूत्रि	१८,२४,४६
धियाया	११,१५	डेवरा (-अंगी)	६,८,१३,३०,३३,५६
धैरायिक	१५	डेवराचपुर	६,११,१३
धाईस्मल	४१	डेवलदे (-देवी)	१३,३३
धाईरुगाह	३६	डेवल वाटक	१२,३२
		डेवसूरि	३६,१६,२०
		डेवानन्द सूत्रि	१६
		डेविद वाचक	८

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
देवीकोट	३६	नागपुर	१२, २५, ३१, ४८
दोलतराव	३६	नागर वाढवीय	२
दोसी	३८, ५६	नागर्जुन	२
धनगिरि	१८	नागेन्द्र	१८
धनदेवी	१०, २३	नागेन्द्र (-गच्छ, -कुल)	६, १८
धनपति	४, ५६	नानगानी	५६
धनपाल	२३, ४४, ४५	नारनडलपुर	४७
धनश्रेष्ठी (महा-)	१०, २३	नाल्ह (साह)	१२, ३२, ५५
धर्मदेव वाचक	२४	नाहटा (गोत्र)	२७, ३६, ३८, ४१
धर्मध्वज	५१, ५४	निर्वृत्ति	६, १८
धर्मनिधान	३५	निर्वृत्ति (-गच्छ, -कुल)	६, १८
धर्मरत्न (-सूरि, -आचार्य)	१२, ३३	नेमिचन्द्र (भांडागारिक)	५, ११, २६, ५२
धर्मरंग (वाचनाचार्य)	१३	नेमिचन्द्र सूरि	६, २०
धर्मवल्लभ (वाचक)	१२, ३१	नेमीदास	३७
धर्मसागर (उपाध्याय)	१३, ५६	नैषधीय काव्य	३६
धर्मसी (साह)	३५	पञ्चनदी	१०, १३, २५, ३३, ४८
धम्मिल	६, १५	पटना (पाटलीपुत्र नगर)	१७, ३८
धरणा	११, ३२	पद्मसिंह	७
धरगोन्द्र	१०, २०, २४, ४३, ४५, ५५	पद्मादेवी	३३, ३७
धवलक (-पुर)	१०, १३, २३, ३३	पद्मावती	३, २३, २४, २८, ४५, ५२-५४
धंधुका (-नगर)	२४	परमहंस	१६
धाडीवाहा (गोत्र)	५६	पर्वत	२६
धारणी	६, १५	पल्लिका	३७
धारलदे	१२, ३१, ३५	पंचायणदास	३७
धारापुरी	१०, २३	पंजाब	३१
धुलेवा (-गढ)	३७, ३६	पाटणा (पत्तन, -नगर, -पुर)	५, ६, ८, १०-१३, २६, २६-३६, ४०, ४१, ५३
नन्द (-भूप, नवम)	२, १७	पादलिसाचार्य	१८
नरसिंह	५२	पादलिसपुर (पालीताया)	३८
नरसिंह सूरि	१६	पारख (परीक्ष) गोत्र	११, १३, ३३
नवदीन	५४	पालनपुर (पाल्हणापर, प्रल्हादनपुर)	११, १२, २६, २६, ३१, ५१
नवलखा (-गोत्र, -शाखा)	१२, २७, ३१	पावापुरी	३८
नव्यनगर	३५	पासदीन (छरत्राण)	५५
नागकरि प्रभु	२	पांचा	५५
नागदेव (अंबड)	१०, २६, ५०		

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
पिण्डविगुद्धिप्रकरणे	४,२०,२४,४६	वागड देश	४६
पिण्डवक (पोपिलिया) खरतराच्छ शाखा (४)	३२,४४	वापेड ग्राम	३७
पीर	३८,४६	वालहा	३३
पीरोजी	३३	वाहलनेर	२८,३१,३३
पीपिलिया गद्य (गच्छ)	१२,४४	वाहलमछ	३४,३६
पुलनव (गच्छ)	१४	वाहरिका	४८
पुण्यपालर ग्राम	३६	वाहाराक नगर	४
पुण्यपीर यज्ञ	११,१२	विनातट	३४
पुनडूर	१३,४४	बोकानेर (विक्रमपुर, नगर)	४,४,७,१०,१३,२७, ३३-३६,३७-४२,४७,४९,४४,४६
पुजायी	४१	बोवी	४७
पुहरीक	३८	बोलाडा (-पुर)	१४,४६
पूजापञ्चाशक प्रकरण	१८	बुद्धिसगर	२०,२१,४३
पूरदेश	३३,४१	बुद्धिसगर (-आर्चाय)	२१,४४
पूजनी	६,१४	बुहरा (गोत्र)	३६,४१
शुष्नीरान	४२	बोत्थरा (बोहित्यरा) गोत्र	२७,३६, २७,४०,४२
शोमदत्त	१३,३३	बौद	६,१६
शोरवाड (प्रागवाड) ज्ञाति	२१,३४,३६,४०	बौद्धराज्य	१८
शौच्यकुल्य राशि	२	बहाराति यज्ञ	२१
शक्तिष्ठानपुर	१६	बाहाण्य	१२
शय्यासन्न (नगर)	२३	भुक्तादयो	४१
शयातन सूचि	१८	भक्तामर स्तोत्र	१६
शयाघ मूर्ति	३०	भक्तिसेम	३७
शयन (ह्यामी)	१,८,१४,१६	भगू ग्राम	४१
शमादेवी	४२	भटनेर नगर	४८
शयमरति प्रहरण	६	भट्टारक पद	३२
शयावना	१८	भयलासी (भय्यासिक, भाड्यासिक)	२७,३२,३६, ४०,४१,४४
शयाचोन गोत्र	१६	भरिला	६,१४
शोत्रिवागर घाचक	३८	भद्रगुप्त (द्याचार्य)	१८
फलोपो (फलवर्दी नगर, वजुदी)	१३,३४,४१,४६	भद्रवाहु (-स्वामी)	१,९,१६
फलाभाई	४१	भयहरण स्तोत्र	१६
फोगारसन	३१	भरतगोत्र	०६
नृनारस (वाराणसी नगरी)	२१	भरुच (भरुच गच्छ, -कच्छ, मृगुच-द)	११,२४,३८,४०
भन्देरक (ग्राम, -पत्तन)	११,२८,४२	भंदाटी (भांडारिक, भाडागारिक) गोत्र	८,११,२६,४२
बलाही (बालारिक) गोत्र	८,११,४६		

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
भाईदास	३७	महाविदेह	४५
भागचंद्र	४१	महिगलदे	१३
भाणसोल (-ग्राम, -नगर, भाणसपल्ली)	६, १२, ३२, ५५	महिमाराज	३५
भानुवड	३६	महेवा	३८
भावनगर	३८	मंगलवर नगर	५४
भावप्रभ (-आचार्य)	१२, ३२	मंडप	१३
भावकृत	४५	मंडोवर (-पुर, -नगर)	३६, ३८, ३९, ५६
भावहर्ष (सूरि, उपाध्याय)	१४, ३५, ५६	माटर गोत्र	१६
भावहर्षीय खरतर घाखा (७)	३५	माणिभद्र यज्ञ	३४, ४८, ५९
भावारिवारण स्तवन	४६	माघव	७
भीमपल्ली (-नगर)	११, १२, ३०	मानतुङ्ग (सूरि)	५, ११, १६, ३०
भीमराज	३७	मानदेव सूरि	१६
भुवनपाल	३०	मानदेव साह	५२
भुवनरत्न (-आचार्य)	१२, ३२	मानसिंह	३५
भोजराज	३७	मालदेव (राठत)	३४, ५६
भूठठीया	१३	मालवा	१०, २०, ४३, ४४, ५५
मकडाशा	४८	माल्हु (गोत्र)	१६, १२, २८-३१
मकसूदावाद	३८, ४१	माहेश्वरी	४, २७
मगली	३६	मांडव नगर	४४
मण्डूक	७	मांडवी (विंदर)	३७, ३८
मणियाहाहि	२८	मिरगादे	४०
मदनपाल	११, २७, २८	मिधिला	३८
मधुकर खरतर घाखा (१)	२४, ४६	मीठडिया सुहरा (गोत्र)	३६
मनक	१, १६	मुगल (मुद्गल)	१३, २६
मनोद ग्राम	४२	मुलतान (-त्राण)	१०, २५-२७, ४७, ५१
मनोहरदास	३६	मूलसिध	४२
मन्दमौर (दशपुर)	१८, १९, ४२	मूलाया (ज्ञाति)	५०
मरुदेश (मारवाड, -मंडल, -स्थल)	४, ११, २१, २६, ३३, ३६, ४१, ५०	मेघराज (-साह)	८, १३, ३३
मरोट	२६	मेडता (-नगर, -पुर, मेदनीतट)	१४, २७, १५-३७, ४०, ५६
महणसी	४९	मेरु	४
महतीयाण (महुसुहु) गोत्र	११, २३, ३०, ४५	मेवाड़ (मेवात)	७
महाकाल (-प्रासाद)	१०, १८, २५	मोरवाड़ा	३८
महागिरि	२	मौजदीन (-पोतिसाह, -छरत्राण)	२३, ४४
महाघन श्रेष्ठी	१०	यथोभद्र (सूरि) (१)	१, ६, १६
		” (२)	२०

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
यशोवद्वज	२८	रिपडी (नदी)	४८
याकिनी धर्मपुर	६	रीहड (रेहड) गोत्र	१३, ३४, ४१, ४६
योधपुर (योधानक)	७, २६	रुपडी	४, ११, २४
रुद्रोदरीया	४८	रुद्रपत्नीय खरतरशाखा (२)	२४, ४७
रुजोहरया	४१	रुद्रसोमा	१६
रतन	४१	रुद्रपाल (साह)	१२, ३१
रतनसी	४१	रुद्रेलिया गण्य (-गण्येय)	११, १२
रतनादे	४०	रुपचद्र	३६, ३७, ४०
रतलाम	४२	रुपजी	३६, ४०
रत्ननिघाम	३५	रुप नगर	३७
रथयादे	१३	रुपमी	३६
रविप्रभसूरि	२०	रेवा नगर	७
रसहूपक	५१	रेवती सूरि	२
रंगविजय गण्यि	१४, ३६, ४०	रेवा छट	३७
रंगविजय खरतरशाखा (६)	३६, ४०	रोहगुप्त	१८
राठपुर	३८	रुक्खा (साह)	३८
राठस	१६	रुदमी	२
राष्ट्रेषा (गोत्र)	२७	रुदमीसाम	३७
राजगण्ड	११, ३०	सखनऊ (लवपाठ नगर)	३८
राजगुह	६, १८, १६, ३८	समुझाचार्यीय खरतरशाखा (७)	३६
राजनगर ('बहनदाबाद' देतो)		समु खरतागण्य (-गण्य, -शाखा) (३)	५, ११, २६, ४३
राज समुद्रगण्यि	३८, ४०	समुनहारक खरतर शाखा (११)	६०
राजवामोपाध्याय	३७	समुतंघपट्ट	४६
राजाराम	३६	सन्धिचंद्र उपाध्याय	४२, ४३
राजेंद्राचार्य	३०	सम्हर	३८
राज्यपुर	३७	साङ्गनेदी	१७, ४१
राधनपुर	३७	सासचंद्र	३७, ३६
रामदेव	२८, ४२	साहार (सामपुर)	१४, २६, ३४, ३५, ४६
रामजिनय उपाध्याय	३७	सुटक	११
राधभ्यागाली (गात्र)	२६	सुयकरथ सर	४१
रावी (नदी)	१३, ४६	सुखिया (गोत्र)	२७, ३१, ३६, ३८, ४७
रासन	२७	सोदवा (सोद्वय पत्तन)	३६
राहु	८	सौहित्य	२
रिश्मल	४०	सौका (-मठ)	३३
रिष्ठी (नगर, पुर)	३७	सुन्दरान्न (राजा)	३८
		" (साह)	३३, ४०

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
वच्छ्रावत	३४,३८	विन्ध्य राजा	१६
वच्छ्रासुत	३४	विपुलपुञ्जपुर	७
वज्र (-सूरि,-स्वामी,-मुनीन्द्र)	२,६,१८,१९	विद्युघ्नसूरि	१६
वज्रसेन (-सूरि,-आचार्य)	१८	विमल (-दंडनायक,-मत्री)	१०,२१,४३
वज्रशाखा (वयरासाहा)	१८	विमलगिरि	५
वड नगर (वृद्धनगर)	२५,५०	विमल चंद्रसूरि	२०
वडली	३४	विमलवसति (वसही)	१०,२१
वडा आचार्यीया गच्छ	१३	विमलादे	४०
वनवासी	१६	विपंकसमुद्र उपाध्याय	११,३१
वनाह नदी	१३,५६	विशेषावश्यक भाष्य	१६
वयष (वहव) नदी	१३,५६	वीर क्षेत्रपाल	१०
वयरी	१८	वीरनाथ योगीन्द्र	५१
वराहमिहिर	१७	वीरप्रभ	२६
वर्धमान	२०	वीरसूरि	१६
वर्धमान सूरि	३,१०,२०,२१,४३,४४	वीसलदे राजा	५४
वल्लभ	४६	वृद्धदेव सूरि	१६
वल्लभी नगरी	१६	वृद्धनगर	२५
वपत साह	३७	वृद्धवादी सूरि	३,१८
वसुभृति (ब्राह्मण)	६,१५	वृहत्खरतरगच्छ	३६,४०
वागडिक (वागडी)	१०,२४	वृहत्संघपट्ट	४६
वाग्भट मेरु	७,११,१३,५२	वृहत्स्पति	२०
वाचक (वाङ्मिग) मंत्री	१०,२४	वेगड (मत्री)	१२,५४
वात्स्य गोत्र	१६	वेगड खरतरशाखा (वेगडागच्छ,	
वाफणा	३६	वैकटगण) (४)	६,१२,३१
वालीनाथ क्षेत्रपाल	१०,२१	वेगराज	१३
वालेवा ग्राम	३६	वेनातट	३७
वालहा देवी	३३	वैलाकुल पत्तन	३७
वावडीय ग्राम	४१	व्याघ्रपत्य गोत्र	१७
वासिष्ठ गोत्र	१७	शूकडाल (शगडाल) मंत्री	२,१७
वाहडदे	१०,२४	शकन्दर (सिकन्दर,—नरपति,-पातिसाहि)	७,१३,५५
विक्रमपुर ('वीकानेर' देखो)		शत्रंजय (सिद्धाचल,-तीर्थ	
विक्रमसूरि	१६	११-१३, १८,२०,३०, ३६-४३, ५४,५६	
विक्रमादित्य	२,६,१८,२६,५३	शक्यंभव सूरि(-भट्ट)	१,६,१६
विजयसिंह	३०	शान्तिसागर (-उपाध्याय,-आचार्य)	१३,३३,५६
विद्याधर (-गच्छ,-कुल)	६,१८	शान्तिसूरि (१)	६
विनयप्रभ (-उपाध्याय,-पाठक)	१२,३०	,, (२)	४८

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
शान्ति स्तव	१६	सलखणपुर	१२
शिवधाम (शिवेन्द्र)	२०, २१	सलेम (-पातिसाहि)	१४, ३६, ४६
श्रीलक्ष्मण (वाचनाचाय)	१२, ३२	सबदेव सूरि (आचाय)	११, २६, ४२
श्रीलक्ष्मणाचाय	६, १६	सहजान्नाग्या	१२
श्रीभाग्यविद्याल	३६	सह्या	४४
श्यामाचाय ('कात्रिकाचाय (१)' देखो)		सहसकरण	३६
श्री	४३	सखपाल	४४
श्रीकरण	४	सरोधर	३७
श्रीचंद्र	११, २७, २६	सप्रार्मासह मत्री	३४
श्रीपाल	२७	सघण्ट (प्रय)	४६
श्रीमाल	२३	सघवो (गोत्र)	१३, ४२
श्रीमाल (नाति, गोत्र)	७, ११, १३, २३ २८, ३१, ४०, ४४, ४७, ४२, ४४	मंडिल सूरि	६
श्रीमालदेव राठल	१३, ४६	सदेहदोनायलि	२७
श्रीरत	३४	सप्रति	२, १७
श्रीमार उपाध्याय	३६, ४०	समृतिविजय सूरि	१, १६
श्रीमारोयलरतर शाखा (१०)	३६, ४०	सनेगरङ्गशाला प्रकरण	३, १०, २३
श्रीसूरि	७, ४३, ४४	सागरचंद्र (-सूरि, -आचाय)	१२, २४, ३२, ४४, ४६
श्रणिक	१७	साणियाला ग्राम	४२
श्रतपट	७	सातल (नूर)	७
पदपीति प्रकरण	१०, २४	सादडी	३७
भृत्यपुर	२७, ४४	सामन्यदाम	४१
भमन्त भद्रसूरि	१६	सामीदास	३६
भमयरात्र	३५	सामुच्छेदिक (४ निहव)	१७
भमवमुद्र उपाध्याय	३५	सादयतक प्रकरण	१०
भमरा	६, १२, ३१	सारगपुर	२४, ४६
भमरसिंह साह	१२, ३३	सालमसिंह	३६
भमियाणा ग्राम	११, ३०	साहि	४७
भमुद्रसूरि	१६	साहिब	४१
भमुद्रागळंगीया	४३	साहसेवा (गोत्र)	३६
भमतपिखर (छिखर गिरिशज)	८, २६, ४१	सिकंदर	४५
भामापन्न	१०, २०	सिद्धवड	२०
भारुनी (दवी)	११, २१	सिद्धसेन (-गणि, दिवाकर)	३, ६, १८, २५, ३५
” नदी	११, २०, ३१, ४३	सिद्धाचय ('रतुव' देखो)	
” पत्तन	१२, ४२, ४२	सिद्धार्थ	१५
” भायडागार	२५	सिरियादे	१२, २१, ३४
		सिरधत	१३

